विधवा

राजाराम शुक्ल

विधवा

लेखक—

पं० राजाराम जी शुक्ल

प्रकाशिका—

श्रीमती फूलकुमारी मेहरोत्रा,
सम्पादिका- "स्त्रीदर्पण" कानपुर।

प्रथम संस्करण १५०० } सन् १९२४ ई० { मूल्य ॥) आठ आने प्रति

प्रकाशिका –
फूलकुमारी मेहरोत्रा,
सम्पादिका 'स्त्रीदर्पण'
फीलख़ाना, कानपुर।

मुद्रक –
विश्वम्भरनाथ टंडन,
ईस्टर्न प्रेस,
फीलख़ाना, कानपुर।

उपहार





अनुक्रमाणिका

समर्पण

—:०:—

[१]

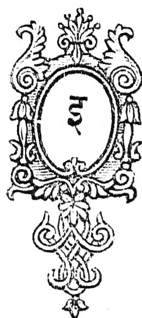
जो प्रियतम के प्रेम-पयोनिधि में बहती हैं,
धारण कर सन्यास, युवापन में रहती हैं।
अपने दुख की बात, नहीं मुख से कहती हैं;
उर पर बज्राघात, सदा हँस कर सहती हैं।
वे सुन लें सन्देश यह, "ईश्वर उनके साथ है;
रक्षक दीनानाथ का, उनके सिर पर हाथ है"।

[२]

जो दुखिया, निर्मूल, निराश्रय, निराधार हैं;
इष्ट-देव—पति-देव, पूजतीं निराकार हैं।
मञ्जुल मन्दिर कहाँ ? निरन्तर निरागार हैं।
चार चार दिन हाय ! बितातीं निराहार हैं;
कैसे रोकें शब्द ये, उनकी भीषण आह को ?
आँसू बन शीतल करें, उनकी दारुण दाह को !



अवतरणिका।



स समय हमारी सामाजिक दशा उन पथिकों की भाँति बहुत ही शोचनीय है जो पावस की मेघाच्छन्न अँधेरी रात में पथ-भ्रष्ट हो गये हैं। अन्धकार के कारण उन्हें कुछ नहीं दिखाई देता। हम कहाँ जा रहे हैं और हमारे साथियों में से कौन किधर भटक गया है—इसका भी पता नहीं। हिंसक पशुओं के कर्कश स्वर और विपत्ति-ग्रस्त लोगों के हाहाकार में कौन क्या कहता है—कुछ सुनाई नहीं देता। इस पर बादलों की गड़गड़ाहट, दादुरों की टरटराहट, झिल्लियों की झङ्कार और निशाचरों के चीत्कार से कान नहीं दिये जाते। वे कभी तो किसी भीषण दलदल में फँस जाते हैं, कभी लुटेरों द्वारा लूट लिये जाते हैं, कभी ठगों द्वारा ठग लिये जाते हैं, कभी पानी का एक करारा झाला आकर उन्हें लथपथ कर देता है और कभी उनके अनेक साथी वेग से बहनेवाली सरिताओं में बह जाते हैं। विषैले प्राणियों के डसने और मांसाहारी पशुओं के आक्रमण से अनेक पथिक असमय में ही काल के गाल में चले गये हैं। किसी पाषाण-खण्ड से ठोकर खाकर गिरना, कँटीली झाड़ियों में उलझना और बियाबान वन में भटकना आदिक घटनाओं का तो कुछ हिसाब ही नहीं है।

वे जुगुनुओं की चमक से भी प्रकाश पाने की आशा रखते हैं, और दिगन्त में टिमटिमानेवाले दीपक की ज्योति पर भी उन्हें विश्वास है। वे जब जिस मार्ग पर

हुए अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँचने में सन्देह नहीं रहता। बिजली की क्षणिक चमक से उन्हें अपनी परिस्थिति का कुछ ज्ञान हो जाता है।

पथिकों में अनेक पुरुष अन्धे, गूंगे, बहरे और लगड़े हैं। इन बेचारों के पास अपने उद्धार के साधन बहुत थोड़े हैं। कुछ उपकरण हैं भी, किन्तु वे उन्हें उपयोग में लाना नहीं जानते। वे अरक्षित स्थानों में बैठे हुए प्रभात की प्रतीक्षा कर रहे हैं। कुछ विचारशील व्यक्तियों का मत है कि पहले हमें किसी युक्ति से सङ्कुठित होना चाहिए और फिर किसी ओर बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए। किन्तु ऐसी विकट परिस्थिति में उनमें एकता का सञ्चार होना भी कष्टसाध्य काम है, क्योंकि उनमें अभी तक स्वार्थ-बुद्धि प्रचुरता से विद्यमान है; वे सब अपनी अपनी गठरी बचाने के लिए प्रयत्नशील हैं। सामुदायिक रूप में वे कुछ नहीं कर सकते। यही कारण है जिससे अनेक प्रयत्नशील पथिकों के प्रयत्न विफल होते हैं।

रात्रि भी इतनी बड़ी है कि उसका अन्त होना असम्भव सा प्रतीत होता है। विपत्ति का क्षण क्षण युग सा होता है। विशेषतः ऐसी रातें जिनमें अपने पराये नहीं पहचाने जा सकते और लोगों के कटु अनुभव उनमें नैराश्य और अविश्वास के बीज बो देते हैं, और भी कष्टकर होती हैं। तब उन्हें ईश्वर ही पार लगा सकता है। पाठक! समाज के ऐसे हृदय-विदारक दृश्यों का दिग्दर्शन कराना मेरी शक्ति से परे है और न मेरा यह उद्देश्य ही है, क्योंकि:--

"जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं,
कहहु तूल केहि लेखे माहीं ?"

नक्क़ारख़ाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है? अस्तु, पूछा जा सकता है कि, फिर आपने अपनी लेखनी

को इतने कागज़ काले करने का कष्ट क्यों दिया ? इस प्रश्न के उत्तर में मुझे जो कुछ निवेदन करना है उसे मैं निम्नाङ्कित ४ भागों में विभक्त करूँगा।

१—पुस्तक का विषय।
२—लिखने का प्रयोजन।
३—पुस्तक के अधिकारी।
४—अन्य ग्रन्थों से सम्बन्ध।

१—पुस्तक का विषय—पुस्तक के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है; परन्तु पाठकों को यह सन्देह हो सकता है कि कदाचित् इस पुस्तक में किसी विधवा का छन्द-बद्ध जीवन-चरित्र होगा, अथवा विधवाओं की हृदय-द्रावक दुर्दशाएं दिखलाकर उनके लिए कृपा-याचना की गयी होगी।

इस पुस्तक में ये बातें नहीं हैं। हां, विधवाओं की भिन्न भिन्न अवस्थाओं का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न अवश्य किया गया है—वह भी यह धारणा रखते हुए कि, किसी कुरीति या अत्याचार को रोकने के लिए समाज या अत्याचारी से प्रार्थना करने की अपेक्षा आत्मसुधार और आत्मबल अधिक लाभदायक हैं।

'विधवा' शब्द सुनते ही हर एक के हृदय में हलचल सी मच जाती है; इसका क्या कारण है ? सुननेवाला निराशा और करुणा के समुद्र में क्यों डूबने लगता है ? कुछ देर सुन्न रहकर ठण्ढी सांस लेना और आंखों से आँसू गिराना किन भावनाओं का परिचायक है ? जो कष्ट एक स्त्री को 'रांड़' शब्द सुन कर होता है वही दुःख एक पुरुष को रँडुआ सुनकर क्यों नहीं होता ? किसी बालिका के विधवा होने पर हम जिस प्रकार आहें भरते हैं उसी प्रकार हम बालक को रँडुआ होते देखकर क्यों नहीं रोते ? इसीलिए न, कि हम समझते हैं कि अब इस बेचारी को

अपना जीवन इसी अवस्था में व्यतीत करना होगा—इसे संसार में रहकर भी अपने आपको स्वर्ग में रखना होगा—वह तपस्या करनी होगी जो किसी भी तपस्वी से बढ़ कर है—वह त्याग करना है जिसकी समता नहीं। इन सब से बढ़ कर जब हम उसके आत्म-संयम की अपनी इन्द्रिय-लोलुपता से तुलना करते हैं तब हम समझते हैं कि जिस प्रकार हम पग पग पर विचलित होते हैं, यदि उसी प्रकार यह भी अपने व्रत से डिग गयी तो यह अत्यन्त पतित, घृणित, त्याज्य और अस्पर्श्य हो जायगी। हम चाहें कितने पतित, भ्रष्ट और दुराचारी हों, हमारे लिए कुछ रुकावट नहीं। हम में स्त्रियों की अपेक्षा अधिक शक्ति है! हम अपनी कुवासनाओं को तृप्त करते हुए भी पवित्र बने रहते हैं! हमें दूसरी स्त्री मिल सकती है। सच है:—

"समरथ को नहिं दोष गुसाईं।"

आगे चलकर धार्मिक ग्रन्थों की छान-बीन हुई और हमारे सनातनी भाइयों को किसी भी ग्रन्थ में स्त्रियों के पुनर्विवाह और नियोग के सम्बन्ध में कोई ऐसा प्रमाण न मिला जिसके सहारे वे विधवाओं के कष्ट कम कर सकते। क्या करें, विवश हैं! यदि इन्हें कहीं भी ऐसा प्रमाण मिल जाता तो ये अवश्य विधवाओं के साथ वही व्यवहार करने लगते। मानो आप स्वयं अपने धार्मिक ग्रन्थों के अक्षर अक्षर का पालन करते हैं!! क्यों, यही बात है?

आर्य-समाजी भाई उन्हीं ग्रन्थों में से अपनी इच्छा-नुसार सब बातें निकाल लेते हैं (कैसी चमत्कार पूर्ण बात है!) और विधवाओं के सम्बन्ध में कुछ नयी युक्तियाँ भी देते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:—

१—हिन्दुओं की मनुष्य-संख्या का कम होना—उनका विश्वास है कि हिन्दुओं की मनुष्य-संख्या कम होने के अनेक

कारणों में से कुछ कारण ये भी हैं। (अ) अनेक युवा विधवाएं जो नियोग हो जाने पर सन्तान उत्पन्न कर सकती थीं वे इसी परिस्थिति में रह कर उससे नितान्त वञ्चित रह जाती हैं।

(आ) रँडुए कन्याओं के साथ विवाह कर लेते हैं, इसलिए देश के अधिकांश नवयुवक स्त्रियों से वञ्चित रह जाते हैं। अच्छा हो, रँडुए विधवाओं के साथ अपना सम्बन्ध करें —

(इ) अनेक विधवाएं जो आत्मसंयम नहीं कर सकतीं गर्भ गिराती हैं। इससे अनेक बालक समाज के हाथ से निकल जाते हैं।

(ई) हिन्दू समाज विधवाओं के साथ दुर्व्यवहार करता है। इसी से वे परेशान होकर विधर्मियों के साथ हो जाती हैं या वेश्यावृत्ति स्वीकार कर लेती हैं। (इनके इस कथन में सत्यता की मात्रा अधिक है।)

२—विधवाओं की अवस्था—इनका कथन है कि, कुछ काल पूर्व तो हमारे समाज में ऐसी ऐसी रोमाञ्चकारी कुरीतियाँ भी थीं जिनको सुनकर अब विश्वास नहीं होता, परन्तु वे अक्षरशः सत्य हैं। दो गर्भवती स्त्रियां आपस में यह निश्चय कर लेती थीं कि यदि उनमें से किसी एक के गर्भ से बालक और दूसरी के गर्भ से बालिका उत्पन्न हो तो वे उन दोनों का विवाह-सम्बन्ध करेंगी। दैवयोग से यदि गर्भस्थ बालक मर जाय तो बालिका माँ के पेट में ही विधवा हो जाती थी! कितने शोक की बात है! जब यहां तक नौबत थी, तब युवा विधवाओं का कहना ही क्या है? साल दो साल या आठ दस वर्ष की विधवाओं का भी गिनाना व्यर्थ है। इसके कारण ये हैं:—

'क—बाल विवाह की कुरीति' ख—वृद्ध विवाह की

कुप्रथा — युवती का बालक के साथ सम्बन्ध, इत्यादि। अनेक युक्तियां विधवा-विवाह के समर्थन में पेश की जाती हैं, जिन्हें हम विस्तारपूर्वक नहीं लिख सकेंगे।

इस समय देश में कुछ लोग और भी नये विचारों के हैं। यद्यपि उनके विचारों का विधवाओं के साथ कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है, तथापि प्रकारान्तर से विधवाओं की समस्या उनके मतानुसार सरलतापूर्वक हल हो सकती है। वे हैं भारतीय महिलाओं को यूरोपीय ढँग से स्वाधीनता देने के प्रेमी। इनके विचारानुसार स्त्रियों के पुरुषों से किसी भी अंश में न्यून अधिकार नहीं हैं, उन्हें ईश्वर ने पुरुषों के अनुरूप ही रचा है; उनमें भी पुरुषों की सी क्षमता है। वे समझते हैं कि यदि इस देश की देवियां इंगलिश लेडियां बन जायँ तो कहना ही क्या है? लोग वास्तविक दाम्पत्य-सुख का आनन्द लूटने लगें; अरुचिकर स्त्री और पुरुष के परिवर्तन में भी कोई अड़चन न रहे; सब प्रकार की सुविधाएं हो जायं। जिन्होंने पाश्चात्य सभ्यता का वास्तविक रूप देखा है वे इतने ही में समझ सकते हैं। जो उससे अपरिचित हैं उन्हें मैं उससे परिचित कराके उनकी नैसर्गिक भावनाओं को भ्रष्ट नहीं करना चाहता। हां, उनके यहां विधवा का प्रश्न कोई प्रश्न ही नहीं है। हो भी कैसे सकता है?

पुस्तक के विषय का इन तीनों मतों में से किसी से किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं। इस पुस्तक में तो एक ऐसी आदर्श तपस्विनी के पवित्र चरित्र की झलक है जिस पर किसी भी समाज को गर्व हो सकता है, जिसका स्थान पति के शव के साथ भस्म हो जानेवाली सतियों से भी बहुत उच्च है और जैसी देवियों की हमें इस क्रान्ति के युग में बड़ी आवश्यकता है।

२—लिखने का प्रयोजन—उपरोक्त तीनों मतों की युक्तियां सुन कर मेरे हृदय में यह भावना उत्पन्न हुई कि यदि किसी विद्वान् का ध्यान इस ओर आकर्षित हो और वह विधवाओं के लिए कोई ऐसा ग्रन्थ लिखे जिससे उनका आदर्श निश्चित हो और साथ ही साथ उनके कष्ट भी कम हो जायँ, तो स्त्रीसमाज का परम उपकार हो। अपनी उस मनोकामना को पूर्ण न होते देख मुझे ही इस विवादग्रस्त विषय को चुनना पड़ा या यों कहिए कि अपना कर्कश स्वर—विधवाओं के आर्त-निनाद से मिलाना पड़ा। अस्तु।

अब मैं उपरोक्त तीनों मतों की आलोचना करते हुए अपनी नीति निश्चित करता हूं।

अ—प्रथम मैं वेद, शास्त्र और परम्परा के माननेवालों—या यों कहिए, कि दुहाई देनेवालों से प्रार्थना करूंगा कि समय की परिवर्तनशीलता किसी को भी एक ही परिस्थिति में नहीं रहने देती। नवीनता जीवन का चिन्ह है। उदाहरणार्थ आश्रम-धर्म और वर्णव्यवस्था की इस समय क्या अवस्था है? हमारे रहनसहन, चलनव्यवहार, बोलचाल और भेष-भूषा में कितना अन्तर आ गया है? हम उन्हें गिनाने में असमर्थ हैं। जब धार्मिक और आचारिक सिद्धान्तों का यह हाल है तब बेचारी परम्परा को कौन पूंछता है? वह तो अब छकड़े का पचड़ा छोड़ कर पञ्जाब मेल पर सवार है, नल का जल पीती और होटल का टोटल (Bill) चुकाती है। जब यह दशा है तब विधवाओं के लिए वेदों और शास्त्रों की नीति कहां तक युक्ति-युक्त है? आप स्वयं कहां हैं और विधवाओं को कहां देखना चाहते हैं? आपही समझायें।

सच तो यह है कि यदि हम लोग मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी की भाँति एक-पत्नी-व्रत बनकर आदर्श प्रेम-

प्रदर्शक बनते, अपने व्रत पर दृढ़ रहते और विधवा स्त्रियों की भांति पूर्ण आत्मसंयम से अपना वियोगात्मक जीवन व्यतीत करते, तो हम स्त्रियों से भी सीता सदृश सती होने की आशा रखते। हम स्वयं अपने आदर्श से गिरे हुए हैं। अतएव, स्त्रियों से उस आदर्श की आशा रखना दुराशा मात्र है। हम उन्हें वैसी शिक्षा देने के पात्र नहीं हैं, क्योंकि यदि विधवाओं के लिए पुनर्विवाह करना पाप है—दुराचार है, तो वैसा करना पुरुषों के लिए उससे भी बढ़ कर है। पुरुष स्त्रियों से बल और विद्या में बढ़े हुए हैं। पुरुषों में स्त्रियों की अपेक्षा अधिक आत्मासंयम होना आवश्यक है। वैधव्य के कठिन क्लेश सह कर भी इस देश की देवियाँ अपने व्रत पर दृढ़ रहती हैं, यह उनके लिए गौरव को, हमारा विचलित होना हमारे लिए लज्जा की, बात है। इतना ही नहीं, वरन् उनके कष्टों की उपेक्षा करके हमने उनके साथ जो दुर्व्यवहार किये हैं, उन्हें वे भले ही क्षमा करदें परन्तु वह न्यायकारी परमात्मा नहीं क्षमा कर सकता। हमें उसका प्रायश्चित्त ज़रूर करना होगा।

अ—लगभग २/३ हिन्दुओं में विधवाविवाह का निषेध नहीं है। अतएव, उनमें बालकों की हत्या की आशंका नहीं हो सकती, और न सन्तानोत्पत्ति का क्रम ही बन्द है। शेष १/३ हिन्दुओं की बाल और युवती विधवाओं के सम्बन्ध में ही ··· गिराने और सन्तान उत्पन्न न करने की बात कही जा सकती है। ऐसी परिस्थिति में जिनकी पुनर्विवाह की इच्छा हो—उन्हें अवश्य आज्ञा देना चाहिए। उनका सम्बन्ध नवयुवक रँडुओं के साथ हो जाना अनुचित नहीं कहा जा सकता। आप उन्हें रोक भी नहीं सकते। हिन्दू समाज में अभी तक विभिन्न प्रकार के लोगों की विचार-धारा बदलने के साधनों का अभाव सा ही है। ऐसे विवाह

विधवा-विवाह के निषेधात्मक नियम के अपवाद कहे जा सकते हैं। रही सन्तान-वृद्धि वाली बात—सो जितनी संख्या पूर्ण ब्रम्हचर्य द्वारा बढ़ायी जायगी, वह इस प्रकार बढ़ायी हुई संख्या से सब प्रकार अधिक महत्वपूर्ण होगी।

उचित तो यह था कि हम बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह आदि कुरीतियों को रोकने पर अधिक ज़ोर देते, अपने चरित्रों का सुधार करते, विद्या-प्रचार की ओर अधिक ध्यान देते और समाज के सङ्गठन में उत्तेजनापूर्वक लग जाते, जिससे ये सब कुरीतियाँ भी दूर हो जातीं और हम लोगों में आत्म-संयम और आत्म-बल उत्पन्न होता। जिस देश का आदर्श आजन्म ब्रह्मचर्य हो, उसी देश में यह इन्द्रियलोलुपता क्या हास्यास्पद नहीं है?

स्त्रियों में विशेष रूप से अविद्या का साम्राज्य है। इसी के भयावह परिणामों से हम ऊंचे नहीं उठने पाते। अधिकांश स्त्रियों का कार्यक्षेत्र चौका-बर्तन और रोटी तक ही परिमित है। अनेक श्रीमतियों का जीवनादर्श विषय, विलास, विनोद और कलह है! यदि विधवाओं में विद्या प्रचार हो और उन्हें पुनर्विवाह के पचड़े में न फँसायी जाकर उनका ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाय, तो उनके लिए कितना विस्तृत कार्य-क्षेत्र है, इसके अतिरिक्त चरखा, सीना, पिरोना, स्त्रीचिकित्सा इत्यादि अनेक कार्य ऐसे हैं जो उनकी जीविका के प्रश्न को चुटकी बजाते हल कर सकते हैं।

विधवाओं का विधर्मियों के साथ हो जाने का प्रधान कारण यह है कि हम उनके साथ दुर्व्यवहार और अत्याचार करते हैं। हमने अपने हृदयों की दुर्बलता दिखाकर तथा स्वेच्छाचारी होकर स्त्रियों के हृदय में विश्वास जमा दिया है कि हमारा प्रेम उनके साथ उनके इसी जीवन तक है,

या यों कहिए कि, हम उनके मर जाने पर आत्म-संयम नहीं कर सकते। अतः वे भी हमारे प्रेम में योगिनी बनने की अपेक्षा पुरुषों की भांति पुनर्विवाह कर लेना चाहती हैं। लेकिन उन्हें हिन्दू रहते हुए ऐसी आज्ञा नहीं मिलती और अविद्या के कारण उन्हें अपने राष्ट्रीय पतन का ज्ञान भी नहीं होता। अस्तु, वे अवसरानुकूल किसी ओर चल देती हैं। यदि आप उनके लिए व्याकुल होकर बन बन फिरें और रावण ऐसे राक्षसों का संहार करें, तो वे भी अग्नि-परीक्षा देने के लिए तैयार हैं और अन्त में पृथ्वी में समा जाने के लिए भी। हमारे यहां की देवियों में अब भी पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक नैसर्गिक-प्रेम और धर्म-निष्ठा है।

जब समाज के नेताओं की दृष्टि समाज के बच्चे बच्चे तक नहीं पहुंचती, उनके स्वत्वों की रक्षा नहीं होती और सब का पारस्परिक सम्बन्ध दृढ़ नहीं होता तब उसका पतन प्रारम्भ हो जाता है। जब तक समाज रूपी समुद्र एक साथ तरङ्गित नहीं होता, तब तक उसके मनोभाव उन्नत नहीं होते। असङ्गठित जातियां सदैव विदेशियों और विधर्मियों द्वारा लूटी खसोटी जाती हैं।

६—भारतीय महिलाओं को पाश्चात्य ढंग से स्वाधीनता देने के प्रेमियों से मेरा निवेदन है कि मनुष्य स्वभावतः जिसे अपनी से अच्छी अवस्था में देखता है उसके अनुकरण करने की चेष्टा करता है। परतन्त्रता के पिंजड़े में पड़े हुए पटुआँ 'चित्र कोट के घाट में ···' बिना समझे बूझे पढ़ते ही हैं। अतएव पाश्चात्य व्यक्तियों का रहनसहन और विभववैभव देख कर उनका ललचाना स्वाभाविक है। परन्तु, विचारने की बात यह है कि इस दौड़ में हम उनका साथ कहां तक दे सकते हैं। भारत, भारत है और इंग्लेण्ड, इंग्लैण्ड। उनके और हमारे प्रत्येक कार्य में ज़मीन

आसमान का फ़र्क़ रहा है, और—रहेगा हमारे अनेक भाइयों ने अधिकांश में उनके अनुकरण करने की कोशिश की, किन्तु इस कार्य में वे कहां तक कृतकार्य हुए हैं—यह हम भली भांति देख सकते हैं। एक दो बातों की भिन्नता हो तब तो हम कह सकते हैं कि, या तो हम उनमें मिलने की कोशिश करेंगे या उन्हें अपनी ओर खींच लेंगे, परन्तु यहां तो रहन-सहन, बोल-चाल, आचार-व्यवहार और भेष-भूषा आदिक प्रत्येक बातमें पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। हम कृषक हैं, वे व्यापारी। हमारा आदर्श और है, उनका और। कहने का प्रयोजन यह है कि जिस प्रकार मुसलमानों से सीखा हुआ परदा हमें अब कष्टकर प्रतीत होता है उसी प्रकार अनुभव कर लेने पर मेमसाहिबा की सी स्वाधीनता भी हमें किरकिरी जँचेगी। स्त्रियों को अर्द्धाङ्गिनी रखने या रहने में ही कल्याण है—उन्हें एक पृथक् समुदाय मानने में नहीं। यही बात पुरुषों के लिए भी कही जा सकती है।

आपको हिन्दूपन के साथ हिन्दू नाम प्यारा है—या केवल नाम? राष्ट्र पर बड़ी आपदाएं आयीं, लेकिन वे हमें टस से मस न कर सकीं, इसके क्या कारण हैं? हमारी धार्मिक द्रढ़ता, हमारा रहनसहन, हमारे आचारव्यवहार और हमारा स्वाभिमान, अथवा केवल हिन्दू नाम? किसी भी नाम का महत्व उसके व्यक्तियों के कृत कर्मों से होता है। देश में मोहनदास नाम के सैकड़ों मनुष्य होंगे। क्या उन सबको भारत-हृदय सम्राट् महात्मा गांधी जी के समान महत्व मिल सकता है? कदापि नहीं। अतएव, यदि वस्तुतः आपको हिन्दू नाम पर गर्व है, तो आपका पहिला कर्तव्य है—हिन्दूपनकी रक्षा करना। अपना आदर्श निश्चित करने में आप स्वाधीन हैं। अनुकरण करना आपको शोभा न देगा।

३—पुस्तक के अधिकारी—ऐसे विकट युग में, जब कि प्रेम

और विश्वास, श्रद्धा और भक्ति, दृढ़ता और पवित्रता समाज से विदा ले रही हैं, जो देवियां इन्हीं सद्गुणों की प्रति-मूर्त्ति बनी हुई हैं, उन्हें छोड़ कर इस पुस्तिका का अधिकारी और कौन हो सकता है? देवि! मुझे भय है कि इन कलुषित करों द्वारा लिखित होने के कारण आपकी विमल कीर्त्ति में कुछ त्रुटि न रह जाय। आपने अपने प्राण-पति के प्राणान्त होते ही सब सांसारिक सुखों पर लात मार कर अपने अर्द्ध-दग्ध हृदय से तपस्विनी बन कर हमारे अमानुषिक अत्याचारों को सहन करते हुए जिस आदर्श को प्रत्यक्ष कर दिखाया है—उसे चित्रित करने में यह मलिन-मति असमर्थ है। आपकी आन्तरिक वेदना का अनुभव करने में हमारे पापिष्ठ हृदय असमर्थ हैं। कैसे कहूँ कि इन कलङ्कित करों द्वारा अङ्कित की हुई पुस्तिका आपके कण्टकाकीर्ण दुर्गम मार्ग को प्रशस्त करने में समर्थ होगी? अत्यन्त लज्जा और संकोच के साथ यह किङ्कर अपनी भक्ति रूपी पुष्पाञ्जलि आपके पवित्र चरणों के समीप रखता है। देवि! अङ्गीकार हो।

४—<u>अन्य ग्रन्थों से सम्बन्ध</u>—अन्त में मैं साहित्यमर्मज्ञ-सज्जनों के समक्ष कर जोड़ कर खड़ा होता हूं और अत्यन्त नम्रतापूर्वक निवेदन करता हूं: भगवन्! मेरी इस अनधिकार चेष्टा को क्षमा करना। यदि समुचित हो तो इस क्षुद्र जन की सदोष कृति को भी अपने वृहत् मानसिक पुस्तकालय के किसी कोने में अपनी उदारता का परिचय देते हुए स्थान दे देने की कृपा करना।

'मित्र-मण्डल' कार्यालय, कानपुर
विजयादशमी।

—राजाराम शुक्ल

सम्वत् १९८१ वि०

प्रस्तावना ।



भ्यता के सच्चे सूचक सुख, शान्ति और प्रेम हैं। यह प्रेम ही है जो सहानुभूति और परोपकार का उत्पादक है— यह प्रेम ही है जो सत्य का पथ-प्रदर्शक है और यह प्रेम ही है जो त्याग और संयम का मूल कारण है।

प्रेम की यह अद्भुत चमत्कारमयी शक्ति जहाँ लगायी जायगी, तुरन्त फलदायिनी होगी क्योंकि, यह वह ज्योति है जो कभी बुझती नहीं, यह वह वायु है जो विश्वव्यापी है और यह वह पराग है जो इस संसार में विरला ही फैला सकता है।

वैधव्य जीवन इसी प्रेम का एक उज्वल स्वरूप है, जिसमें किसी प्रकार की भी त्रुटि नहीं । एक सच्ची प्रेमिका के लिए वैधव्य-जीवन उतना ही सुगम है, जितना एक सच्चे सिपाही के लिए सङ्ग्रामस्थल में युद्ध करना। आदर्श विधवा की नैतिक तथा सामाजिक शिक्षा इतनी उच्च कोटि की होती है कि वह वैधव्य-जीवन को प्रेम का परीक्षा-काल समझ कर झेल ले जाती है। यद्यपि वह उसका आह्वान नहीं करती, तथापि उसके लिए वह सदा तैयार रहती है। प्रेम ही कष्ट-सहन की कुञ्जी है और प्रेम ही कठिन से कठिन सङ्कट के पड़ने पर विधवा को धैर्य्य प्रदान करता है। प्रेमी के लिए संसार में कुछ भी असहनीय नहीं; विपत्तियाँ आती हैं, परन्तु प्रेमनिरता विधवा को क्षति पहुँचाने में असमर्थ हो कर लौट जाती हैं। अन्त में योगिनी प्रेमिका को

प्रेमी का दर्शन होता है; इसीलिए उसका रोम रोम आशा-वादी है ।

शुक्ल जी की इस रचना में यही तत्व अत्यन्त रोचक ढङ्ग से समझाया गया है। इसमें विधवा की भिन्न २ अवस्थाओं का हृदयद्रावक वर्णन है। यह कोरी कल्पना नहीं, वरन् एक सती विधवा की प्रायः सभी मानसिक अवस्थाओं का मनोहर चित्र है— पुस्तक में त्याग, संयम, अनुराग, स्वावलम्बन और पतिप्रेम कूट कूट कर भरा हुआ है।

यह अत्यन्त मर्मभेदी है और इसमें इतनी पवित्रता है कि कलुषित से कलुषित हृदय भी इसे पढ़ने पर एक बार नेक बन सकता है। ईश्वर सत्ता में अटल विश्वास इस रचना की ज्योति है; फिर कौन कह सकता है कि इस पुस्तक में वह चमत्कार नहीं है जो तामस वृति वाले प्राणी में सात्विकता भर सकता है और दुरात्मा का अन्तःकरण शुद्ध कर सकता है ?

इतना होते हुए भी पुस्तक में अहिंसा का भाव सर्वत्र प्रतीत हो रहा है। यद्यपि लेखक ने किसी भी मत विशेष का इसमें प्रतिपादन नहीं किया है; आद्योपान्त 'न्याय' और समदर्शिता को ही औचित्य और अनौचित्य की कसौटी माना है, तथापि मेंहदी को लाली की भाँति पुस्तक में 'प्राचीन आर्य मर्य्यादा की रक्षा करना 'भारतवासियों का ही नहीं—मनुष्य मात्र का परमधर्म है'—सर्वत्र विद्यमान है।

महात्मा गांधी जी भी, जो कि भिन्न भिन्न धर्मों के ग्रन्थों का अध्ययन कर चुके हैं हिन्दूधर्म की व्यापकता, उदारता और विशुद्धता पर मुग्ध हैं; वे उसके मूल सिद्धान्तों को समस्त संसार के लिए हितकर समझते हैं। उसी हिन्दू मत की सर्वोत्कृष्ट वस्तु पाठकों के सामने शुक्ल जी ने रखने की कृपा

की है। सम्भव है कि पश्चिम आगे चल कर इस बात को यथावत् समझ कर अपनावे और विवाह सम्बन्धी अपने आजकल प्रचलित विचारों को सदा के लिए तिलाञ्जलि दे दे।

प्रस्तुत पुस्तक में एक विशेषता यह है कि यह पुस्तक नाटक या आख्यायिका का प्लाट न रखते हुए भी कला का एक सम्पूर्ण फल है-- इसका लेखक वह शिल्पकार है जिसकी छैनी रूपी लेखनी ने एक सपाट पत्थर को क्रमशः खुतर खुतर कर अपनी कुशलता एवं पटुता का परिचय देते हुए वह मूर्ति तैयार कर दी है, जिसके आगे दर्शक का मस्तक अपने आप झुक जाता है। लेखक वह चित्रकार है जिसके ब्रुश रूपी पाँच इञ्च के कलम ने सादे रङ्गों के क्रमशः सम्मिश्रण से वह चित्र अङ्कित किया है जो चितेरों को विस्मय में डाल देता है... लेखक वह कुम्भकार है जिसकी चार अंगुल की थपेड़ी रूपी लेखनी ने सम्हाल २ कर साधारण मिट्टी रूपी अनुभव की सहायता से, पाण्डित्य रूपी चाक के आधार पर बनाकर और धार्मिकता के आँवे में पका कर एक सुन्दर कलश तैयार कर के उसमें उच्चादर्श' रूपी मधुर रस भर दिया है। आशा है कि यह 'टौनिक' रस भक्तों, रसिकों और सैनिकों में नया जीवन अवश्य प्रस्फुरित कर देगा।

इस पुस्तक में उच्च कोटि के चरित्र (कैरेक्टर) का स्वाभाविक स्वरूप झलक रहा है। इसमें कर्तव्यपरायणता, नम्रता, और धर्मनिष्ठा का जैसा सुन्दर समावेश है—ऐसा बहुत कम हिन्दी-ग्रन्थों में देखने में आता है।

इङ्गलिस्तान के परम प्रसिद्ध कवि मिल्टन ने अपनी सुविख्यात रचना Comus में जिस सती का चित्र खींचा है, उससे क्या यह सती किसी अंश में भी कम है ?

वर्ड्स्वर्थ क्या अपनी Happy warrior नामक कविता में एक सुखी सैनिक की विशेषताएँ बतलाने में अनायास ही इस विधवा का गुणगान नहीं कर जाता है?

अपनी मर्य्यादा का, अपनी कमज़ोरियों का, तथा अपने पौरुष का ज्ञान इस सती को पूरा है। तो क्या महात्मा सुक़रात के इस प्रसिद्ध तर्क के अनुसार यह ज्ञानवती नहीं कही जा सकती कि 'अपनी त्रुटियों को जानना भी ज्ञान है'?

शुक्ल जी हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाएँ नहीं जानते; तिस पर भी वे ऐसी रचना को तैयार करने में समर्थ हुए हैं कि नवयुग की नवीन लहर की लगभग सभी बातें इसमें स्वतः प्रस्तुत हो गयी हैं।

एक विचित्र बात यह है कि लेखक एकाध स्थान को छोड़ कर पुस्तक भर में परदे के पीछे है — परन्तु वह है विद्यमान सर्वत्र ! पग पग पर विज्ञ लेखक की, विधवा के प्रति प्रगाढ़ भक्ति एवं सच्ची सहानुभूति का परिचय मिलता है। ऐसा मालूम होता है कि उसका हृदय विधवाओं की ओर से करुण क्रन्दन कर रहा है। कभी वह ईश्वर के दरबार में उसकी सिफ़ारिश पहुँचाता है, कभी उसके 'अपार दुख कानन' को नापने चलता है, कभी उसे सान्त्वना देता हुआ दृष्टिगोचर होता है और कभी उसको सिंहासनासीन देखकर बधाई देता हुआ सामने आता है, कभी वह 'राँड़' शब्द की कठोरता पर विचार करके निराशा में बहने लगता है, कभी 'त्यागमूर्तियों' की ओर से 'पामर पुरुषों' को धिक्कारता तथा उनकी धैर्यहीनता का उपहास करता है और कभी उनके महान व्रत का महिमागान करता है।

कभी वह विधवा के वेश पर ठण्ढी साँसें लेकर अत्यन्त शान्त भाव से विचार करता है, कभी उसके पिछले तथा

वर्तमान जीवन की रोमाञ्चकारी तुलना करता है ; कभी विधवा के निराधार जीवन और अथाह शोक-समुद्र को देख विह्वल हो तड़प उठता है, कभी उसकी मनोगत चिन्ताओं का ज्यों का त्यों चित्र खींचता है, कभी समाज के थोथेपन को, उसके धब्बेदार, गन्दे और महानिन्द्य स्वरूप को नङ्गा करके दिखलाता है और कभी विकल हो प्रभु के पास पुनः दौड़ जाता है और स्तुतियाँ करने लगता है। यह सब कर चुकने पर भी जब प्रभु नहीं पसीजते, तब वह विधवा से पुनः अपने अन्तःकरण को टटोलने को कहता है... विधवा के प्रति उसकी सहा-नुभूति पराकाष्ठा तक पहुँचती हुई प्रतीत होती है ।

लेखकने कहींकहीं पर खूबी के साथ हिन्दू दर्शन और सां-ख्य की भी दो एक मुख्य बातें ले ली हैं। पेज ६०(८), पेज ६४(८)

पाखण्ड तथा धर्म के प्रचलित अर्थ का जोकि केवल लकीर पीटना मात्र रहगया है—भी खूब भण्डाफोड़ किया है !

पुनर्विवाह को विशुद्ध प्रेम में कण्टक समझने वाली, और आर्य मर्य्यादा का पूर्ण ज्ञान रखने वाली विधवा नियोग या किसी कुलवन्त प्रेमी से प्रेमबन्धन को तुच्छ ही नहीं वरन् घोर अज्ञानता का सूचक समझती है; तिसपर भी वह इतनी अहिंसावादिनी है कि दूसरों को अपनी रुचि के अनुसार चलने से रोकती भी नहीं ! पेज ४७ (६)

परन्तु विशेष बात तो यह है कि बाल विधवाओं को, भ्रष्ट होने वाली तथा संयम न कर सकने वाली बहिनों को यद्यपि वह पुनर्विवाह की अनुमति दे देती है तथापि उसके इस काम को 'उस पर दूसरे को जय होना', 'रति की अनुचरी बनना' इत्यादि बतलाती है। इससे पता चलता है कि इसके मस्तिष्क में स्वाधीनता का कितना ऊँचा आदर्श है।

महाकवि पं० अयोध्यासिंह जी 'हरिऔध' के शब्दों में

"न वह साहित्य साहित्य है, न वह कल्पना कल्पना, जिसमें जातीय भावों का उद्‌गार न हो"। शुक्ल जी की इस रचना में समाज सेवा का भाव तथा देशोत्थान की लहर पर्याप्त रूप से विद्यमान है। इन गुणों में यदि भाषा की निर्दोषता, वाक्यों की प्रचुरता, भावों की मौलिकता, वर्णन की सजीवता— ये सब गुण जोड़ दिये जायँ, जो कि इस पुस्तक में निर्विवाद रूप से मौजूद हैं, तो फिर यह स्वीकार करने में किसे सङ्कोच होगा कि यह पुस्तक सच्चे साहित्य का एक खण्ड है और इसका हिन्दी संसार आदर करेगा ?

इन सब भावों के साथ साथ, साड़ी के किनारे की तरह एक विचार और गुप्त रीति से परन्तु, अखण्डित क्रम से, दृष्टि-गोचर हो रहा है— वह है Psychological treatment.

आदि से अन्त तक कार्य कारण सम्बन्ध से, तर्कनाओं के अनेक सूक्ष्म तारों के जटिल जाल से और मानस शास्त्र के नियमों के सूत्रबद्ध प्रयोग से लेखक ने पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ा दी है। ईश्वर के प्रति स्तुति से प्रारम्भ और सब देवताओं के दर्शन से इस पुस्तक का अन्त होता है। बीच में सत्यपरायणा विधवा को एक गुप्त शक्ति प्रोत्साहन देती है और उसकी चरम सीमा तक पहुँची हुई Sincerity उसे परमेश्वर की कृपापात्री बनाने में सफल होती है। इस कविता रूपी पहाड़ी का सर्वोच्च शिखर Climax ४० वें पेज में— पुस्तक के ठीक मध्य में— पहुँचता है। विधवा वहीं से पूर्ण बल पाकर कार्य क्षेत्र में पदार्पण करती है।

ऐसी सती को महलों के सुख, प्रेम व्यवहार, तथा नाना प्रकार के प्रलोभन भी अपने निर्दिष्ट पथ से विचलित नहीं कर सकते। न अलियाँ, न कुञ्जगलियाँ, न लतिकावलियाँ, न नन्दन वन, न कलरव, न शीतल मन्द समीर और न रत्नों का

भण्डार— किसी में भी इतनी शक्ति नहीं कि उसकी लगी लौ को कम कर सके।

यही कारण है कि वह फलते फूलते दम्पत्तियों के बीच में रहती हुई भी 'राज रोग' से साफ़ बच जाती है। वह 'पुण्य-प्रतिभा' — जिसकी स्वामी तक सीधी डोर लगी है, जो बलिदान का जीता जागता उदाहरण है, जिसकी आर्य जाति ऋणी है—वही सन्यासिनी, समाज सेवा के कई क्षेत्रों में पर्य्याप्त भाग लेकर तथा सुहागिनों के कल्याण की सुकामना करती हुई अपने कुछ शौर्य का परिचय देती है।

परन्तु जब वह "दयनीय क्वारियों" की भीषण यन्त्रणा पर दृष्टि डालती है, तब वह अपने दुख को, जो मेरु समान है, तृण तुल्य जानने लगती है। वीर रमणियों के जीवन चरित्र पढ़ कर वह अपना हृदय जुड़ाती है और निर्भय हो जाती है। धर्म बात बात में नष्ट नहीं हुआ करता; छूमंतर की तरह नहीं उड़ जाता— बल्कि ईमानदार व्यक्ति के लिए धर्म जीवन भर की समस्या है— गिरना, पड़ना, हथेली झाड़ कर उठ बैठना प्रार्थनाएँ करना, शक्ति पाना, आगे बढ़ना, आपदाओं का सामना करना, फिर फिसलना, फिर चढ़ना— ये इस कँकरीले पथ के गड्ढे और टीले हैं, जिनको पार करने पर ही आत्मा सानन्द और अपने अनुकूल वायुमण्डल में भलीभाँति विचरने योग्य होता है। ऐसी धर्मात्मा स्त्री फिर इन्द्रियों से प्रेरित न हो कर इच्छाओं को वश में करने वाली हो जाती है और तभी वह वन, वीहड़ या गेह—कहीं भी—कामी से कामी नर पिशाचों से डरती नहीं— पर्दा की अनावश्यकता फिर स्वयं सिद्ध हो जाती है।

अन्त में वह समाज-सुधार का एकमात्र उपाय, एक पत्नीव्रतता, पर ज़ोर देती हुई और नाना प्रकार के उपायों से

स्त्रियों के अधिकारों के लिए घोर आन्दोलन करती हुई, यहाँ तक कि गोसाईं जी तक पर भी निर्भीकता से अपना मत प्रकट करती हुई, एक उज्वल भविष्य की आशा हृदय में रख कर इस असार संसार को त्यागती है।

इस पुस्तक में केवल पाँच या छः बार उर्दू शब्दों का प्रयोग हुआ है, लेकिन वे ऐसे शब्द हैं जो अपने २ स्थानों पर बड़ी "चस्पाँ" तौर पर बैठे हुये हैं— और कविवर पं० राम नरेश जी त्रिपाठी के विचारानुसार उर्दू शब्दों का प्रयोग हिन्दी के लिए शुभ लक्षण है। मेरी भी यही धारणा है।*

हर्ष की बात है कि इस काव्य में त्रिपाठी जी की "परमावश्यक बातों" का भी पालन स्वतः हो गया है; अर्थात् इस पुस्तक में लिखित प्रायः सभी कविताएँ ऐसे छन्दों में हैं जो भली प्रकार गाये जा सकते हैं और इसकी अधिकांश कविताएँ 'आम फ़हम' भाषा में हैं! अब और क्या चाहिये?

आशा है कि अब 'विधवायें स्वच्छन्द रहेंगी मीरा बन कर।' और, वे 'तोड़ेंगी भव-फन्द विजयिनी वीरा बन कर ... ...

आयेंगे जब सुदिन, दुखद दुर्दिन गत होंगे।
पतिव्रता नारियां, पुरुष पत्नीव्रत होंगे॥'

लेखक के मनोहर शब्दों में साहस पूर्वक, नहीं २ डङ्के की चोट, फिर मैं यह क्यों न कहूँ कि:—

'ऐसा उच्चादर्श दूसरा दिखलावे संसार कहीं'?

—परशुराम

---

* मालूम होता है कि प्रेस की ग़लती से दो तीन जगह छोटी २ भूलें रह गई हैं जो कि अगले संस्करण में प्रकाशिका जी निकाल देने की कृपा करेंगी— जैसे पेज ६ में 'हर' के स्थान पर 'रह', पेज ३४ में 'तृणखण्ड' के स्थान पर 'त्रणखण्ड' और पेज ३६ में 'आते' और 'जाते' में स्थानान्तर। प०



विधवा ।

१—विधवा-विवेचन

(१)

प्रभुवर ! इसे उबारो, इस प्रेम-गर्विता का-

सर्वस्व लुट चुका है ।

द्रुत दुर्दशा सुधारो, सौभाग्य--वर्जिता का-

आराध्य छुट चुका है ।

भव--सिन्धु के भँवर में, प्रिय-कर्णधार-हीना

तरणी फँसी हुई है ।

जग-जाल के जठर में, यह निराधार दीना;

हरिणी फँसी हुई है ।

(२)

क्यों यह उजड़ रही है ? इस पुष्पवाटिका का,

माली कहाँ गया है ?

सब साज तो वही है, नट नव्य-नाटिका का,

आली ! कहाँ गया है ?

सन्ताप से झुलस कर, फूली फली नहीं यह,
निर्मूल वल्लरी है ।
उत्साह से उकस कर, फूली कली नहीं यह,
सद्भावना-भरी है ।

(३)

निशि-दिन तड़प रही है, पिञ्जर फँसी शिशिर में,
यह खिन्न काकपाली ।
अनुमान मम यही है, जल--हीन मानसर में—
है मर रही मराली !
कुसुमित वृथा हुई है, जीवन--बसन्त में यह,
मधुकर-विहीन क्यारी।
अनुचित प्रथा हुई है, है इस अनन्त में यह,
प्रिय-पति-विहीन प्यारी।

(४)

यह तम-मयी सदी है, मञ्जुल-मयङ्क मुख की,
कल-कौमुदी कहाँ है ?
अबतो बदी बदी है, सहवास स्वामि-सुखकी,
सुन्दर-सुदी कहाँ है ?
नैराश्य की निशा में, सब ओर है अँधेरा,
हिमकर उदित नहीं है ।
दुर्दैव ! इस दिशा में, होगा कभी सवेरा ?
दिनकर उदित नहीं है ।

(५)

फँस कर विपत्तियों में निष्प्राण सी पड़ी है,
काया यहाँ अकेली।
कतिपय-प्रवृत्तियों में, म्रियमाण सी पड़ी है,
छाया यहाँ अकेली।
चिन्तित, प्रतारिता सी, इस त्रस्त कामिनी को,
सूनी कुटी समझ लो।
श्रय-हीन सारिका सा, भय-व्यस्त-भामिनी को,
सचमुच लुटी समझ लो।

(६)

प्रिय-विरह-वेदना से, अति-विह्वला तड़पती,
यह क्षुब्ध सारसी है।
भय-भीत भर्त्सना से, छाती सदा धड़कती,
यह भूमि-भार सी है।
इस घोर आपदा में, प्रत्यक्ष देखता हूँ—
मसि-मूर्ति आह! तेरी।
अङ्कित असम्पदा में, निष्पक्ष देखता हूँ,
यह स्फूर्ति वाह तेरी!

(७)

वे सुर परम रसीले, जिसमें न बज सकेंगे,
है तार-हीन तन्त्री।
सब अङ्ग अङ्ग ढीले, जिसके न सज सकेंगे,
है सार-हीन यन्त्री।

अथवा बिलख बिलख कर, करुणा यहाँ स्वतः क्या-
करुणा दिखा रही है ?
या यों निरख निरख कर, आपत्ति वस्तुतः क्या—
तरुणा दिखा रही है ?

(८)

कोमल कृपालु कर में, शोभित कभी न होगी,
वह फूल की छड़ी है।
द्युतिमय दयालु-उर में, भूषित कभी न होगी,
हतभाग्य वह लड़ी है।
जलकर विरह-अनल से, अति जर्जरित-द्रवित हो,
—यह गिर रही मढ़ी है।
दुख-दल परम प्रबल से, पीड़ित तथा व्यथित हो,
—यह घिर रही गढ़ी है।

(९)

दारुण वियोग-दुख से, घड़ियाँ नहीं घटेंगी,
यह चिर-वियोगिनी है।
अनुचित नियोग-सुख से, कड़ियाँ नहीं कटेंगी,
यह प्रेम-योगिनी है।
थी उड़ रही गगन में, पर डोर कट गयी है,
वह चङ्ग मानता हूँ।
जिसकी समाज तनु में, सब चाह घट गयी है,
वह अङ्ग मानता हूँ।

(१०)

सनकर पराग से जो, सुरभित कभी न होगी,
—वह वायु मानता हूँ ।
आमरण राग से जो, रञ्जित कभी न होगी,
—वह आयु मानता हूँ ।
या यह मरुस्थली है, जिस पर न घन घिरेंगे,
वैधव्य-गिरि-शिखा है ।
आजन्म बेकली है, इसके न दिन फिरेंगे,
भगवान! क्या लिखा है ?

२-- विधवा की वेदना ।

(१)

है वह दारुण दुःख, किसी भी रोग में ?
है वह संयम त्याग, भजन तप योग में ?
है क्या वह परिताप, कर्म-फल भोग में ?
है अथवा वह क्लेश, विशेष वियोग में ?
जो सहती नित हाय! एक विधवा यहाँ,
ऐसी पीड़ित अन्य, भला होगी कहाँ ?

(२)

बिन दिन-पति अति खिन्न, कमलिनी सो गयी,
'पी—पी' कर कुछ रोज़, चातकी रो गयी।
मछली जीवन-भिन्न, मर गयी—खो गयी,
दुख की इसी प्रकार, 'इतिश्री' हो गयी।
इनके दुख सहनीय, स अन्त—ससीम हैं;
पर इसके सब क्लेश, असह्य—असीम हैं।

(३)

हैं लिखते कवि-वृन्द, मृत्यु की यातना;
करते हैं अभिव्यक्त, भक्त की भावना।
रौरव का अनुमान, स्वर्ग की कल्पना;
भाव-भेद रस-भेद, बताती तर्कना।
पर वे सब असमर्थ, विफल—भयभीत हैं;
विधवे! तव सब कष्ट, कल्पनातीत हैं।

(४)

डूबे हैं सब जीव, जगत के शोक में;
बड़े बड़े परिताप—शाप हैं लोक में।
देखे हैं भयभीत, दृगों की नोक में,
अथवा मिले अनेक, अयश—अपलोक में।
है यह निश्चय सत्य, सभी की थाह है,
पर, विधवे! तव शोक-समुद्र अथाह है।

(५)

शूली में यह शूल, न कारागार में;
क्षुधा, तृषा, क्षति, क्षोभ, न क्षत, संसार में।
पावक में यह ताप, न शीत तुषार में;
है यह कहाँ प्रहार, खलों की मार में?
मिला हाय! किस हेतु, तुझे यह दण्ड है?
विधवे! तुझ पर दैव, विशेष प्रचण्ड है।

(६)

सुन विधवे! तव धर्म, धर्म भी दङ्ग है;
कठिन कर्म-गति देख, कर्म भी तङ्ग है।
सात्विकता लखि मर्म, मर्म का भङ्ग है;
उड़ा देख तव शर्म, शर्म का रङ्ग है।
गाने में तव कष्ट, गिरा असमर्थ है;
फिर सब तर्क, वितर्क, भावना व्यर्थ है।

(७)

यों गिरि गहन कठोर, न विपिन अगम्य है;
विषधर विषम—कराल, न व्याघ्र अदम्य है।
भय-प्रद यों न श्मशान, न मृतक अरम्य है;
ज्यों तुझ पर विधि-रोष, सदोष—अक्षम्य है।
कर करुणा अब दूर, कलेजा थाम ले;
मत कर आर्त निनाद, धैर्य से काम ले।

(८)

इतने तनु पर लोम, न कच अन्यत्र हैं;
सागर में जल-बुन्द, न नभ—नक्षत्र हैं।
सिकता में कण और, न तरु में पत्र हैं।
जितने तनु पर घाव, हुए सर्वत्र हैं।
ले जाऊँ किस ओर—विशेष विषाद है!
विधवा सी दुख-दग्ध, किसी को याद है?

(९)

मन्त्रों में यह शक्ति, न तन्त्रों में तथा—
करें दूर दुख—द्वन्द, सुनें करुणा-कथा।
हुए सुधारक मौन, कठिन कुल की प्रथा!
चले चिकित्सक-वृन्द, अमिट है यह व्यथा।
इस रुज का उपचार, जड़ी बूटी नहीं;
इस की सी तक़दीर, कहीं फूटी नहीं!

(१०)

छूट गये सब सौख्य, सुदिन का अन्त है;
दुर्दिन ही अब हाय! अपार—अनन्त है।
क्यों इस पर यह कोप, हुआ हा हन्त! है?
कन्त, कन्त अब अन्त—कहाँ भगवन्त है?
श्रम का उपक्रम प्राप्त—नहीं विश्राम है।
विधवा से सब भाँति, हुआ विधि वाम है!



३—विधवा-विलाप।

मेरे प्राणाधार ! कहाँ हो ?
कैसे पार करूँ करुणामय !
जीवन--पारावार, कहाँ हो ?

(१)

निराधार होकर बहती हूँ;
मृत्यु-यन्त्रणा नित सहती हूँ।
हृदयेश्वर ! किस ओर छिपे हो ?
सुनते हो मैं क्या कहती हूँ ?
तुम बिन मैं कैसे रहती हूँ ?
किस का अवलम्बन लहती हूँ ?
इस तरणी के एक तुम्हीं थे—
सुकुशल कर्णाधार, कहाँ हो ?
मेरे प्राणाधार ! कहाँ हो ?

(२)

बीच भँवर में छोड़ गये तुम;
सारा नाता तोड़ गये तुम।
धोखा देकर हाय, हृदय-धन !
असमय में मुँह मोड़ गये तुम।

भाग्य यकायक फोड़ गये तुम;
जोड़ी कर बेजोड़ गये तुम।
सुन्दर सौम्य-मूर्ति बिन स्वामी!
सूना है संसार, कहाँ हो?
मेरे प्राणाधार! कहाँ हो?

(३)

हे प्रभु! कैसे धैर्य्य धरूँ मैं?
शोक-सिन्धु किस भाँति तरूँ मैं?
नहीं निकलते प्राण अभागे,
इच्छा है, तत्काल मरूँ मैं।
साँसें अब क्यों व्यर्थ भरूँ मैं?
हाय! करूँ क्या? क्या न करूँ मैं?
मुझ दरिद्रिणी के आभूषण,
शुचि-रुचि-मय शृङ्गार कहाँ हो?
मेरे प्राणाधार! कहाँ हो?

(४)

है यह दासी निपट नवेली;
कभी रही थी नहीं अकेली।
हा पति! ऐसी विकट यातना,
अब तक नहीं कभी थी झेली।
सदा मोद से खायी-खेली;
और रही करती रँगरेली।



पाऊँ तु[illegible]हाँ ? हा प्रियतम !
पावन प्रेमागार, कहाँ हो ?
मेरे प्राणाधार ! कहाँ हो ?

(५)

आहों से उर-पुर अधीर है;
नीर निरन्तर नयन-नीर है।
भोजन में कुछ स्वाद नहीं है;
सर्प-स्वाँस सी यह समीर है।
अङ्ग अङ्ग में अधिक पीर है;
और शिथिल सारा शरीर है।
प्राणनाथ ! ये आधि-व्याधियाँ,
मिटें, करो उपचार, कहाँ हो ?
मेरे प्राणाधार ! कहाँ हो ?

(६)

तुम बिन व्याकुल पड़ी नाथ ! मैं,
हाय, होगयी हूँ अनाथ मैं !
ऐ मेरे हृद्देव ! बताओ ;
हो सकती हूँ क्या सनाथ मैं ?
सती भी न हो सकी साथ मैं;
मलती ही रह गयी हाथ मैं।
भोले भाले भले मनोहर ;
भावों के भण्डार, कहाँ हो ?
मेरे प्राणाधार ! कहाँ हो ?

(७)

क्लेशों का कानन अपार है;
खल बटमारों का प्रहार है।
जिधर देखती हूँ जीवन-धन !
हाय ! उधर ही अन्धकार है—
जीवन ही हो रहा भार है;
इस प्रकार जीना असार है।
जीवन के जीवन, मन के मन,
तनु-तंत्री के तार, कहाँ हो ?
मेरे प्राणाधार ! कहाँ हो ?

(८)

जीवनमयी बनाया मुझको;
बारम्बार मनाया मुझ को।
लोचन-ओट न किया कभी हा !
सभी भाँति अपनाया मुझको—
बातों में बहलाया मुझ को;
अब दुख दे कलपाया मुझ को।
देख चुकी सब इन आँखों से,
यही तुम्हारा प्यार, कहाँ हो ?
मेरे प्राणाधार ! कहाँ हो ?

(९)

क्या वह मुख फिर देख सकूँगी ?
अब मैं किस की ओर तकूँगी ?

छकी नहीं अब तक जिस छबि से,
उससे अब किस भाँति छकूँगी ?
किसके बल पर गर्व करूँगी ?
किसका दम मैं हाय ! भरूँगी ?
स्नेही, सरल-स्वभाव सुहृदवर !
सुख-सुषमा के सार, कहाँ हो ?
मेरे प्राणाधार ! कहाँ हो ?

(१०)

मुझ दुखिया का एक सहारा,
पर्णकुटी का दीपक प्यारा—
रूठ गया—बुझ गया, अचानक-
हा ! मुझ से कर गया किनारा !!
वह सीधापन कहाँ सिधारा ?
नाथ ! निपट ही मुझे विसारा ।
मन-मानस के हंस ! कहाँ हो ?
हाय ! हृदय के हार, कहाँ हो ?
मेरे प्राणाधार ! कहाँ हो ?



४—विधवा-वेश।

(१)

कर पर धरे कपोल, मलिन मुद्रा किये,
भूली है निज भान, ध्यान पति में दिये।
लोक--लाज, कुल--कान--भार भी है लिये;
बैठी है इस भाँति, आर्त आँसू पिये।
यथा व्यथा स्वयमेव, व्यथा में मग्न है,
या छवि की वर-बेलि, भूमि-संलग्न है।

(२)

तनु पर प्रकटित श्रान्ति, हृदय में दाह है,
मन में भीषण क्रान्ति, भ्रान्ति अवगाह है।
आशा रही, न शान्ति —मृत्यु की चाह है,
कहाँ गयी मुख--कान्ति, कहाँ उत्साह है?
ले कर में तृण-खण्ड, खोदती है धरा,
मानो शोक-रहस्य, उसी में है भरा!

(३)

हाथों में अनमोल चूड़ियाँ हैं नहीं,
दिखते नहीं सुहाग--चिह्न कुछ भी कहीं।
सखियाँ रहीं न पास, न वे अँखियाँ रहीं,
माया, दीन—मलीन, मिली मुझ को यहीं!

कहाँ मनोहर चीर? विभूषण हैं कहाँ?
है कृश सुभग शरीर—न दूषण हैं यहाँ।

(४)

हैं न सजे सुख--साज, न कोई रङ्ग है,
और न यहाँ अभङ्ग उमङ्ग—तरङ्ग है।
गया हाय! लुट राज्य —छत्र भी भङ्ग है,
सहकर कठिन प्रहार, आगयी तङ्ग है!
सब आमोद-प्रमोद ले चुके हैं विदा,
करुणा--रस, बस, रोम रोम में है भिदा।

(५)

सूखे हैं युग ओष्ठ, नहीं रुचि पान की,
बदल गयी वह बान, मन्द मुसकान की।
चञ्चलता चकचूर हुई द्युति म्लान की,
कहाँ गयी स्वयमेव सरसता गान की?
आती हैं दिन रात आह की आँधियाँ,
घेरे खड़ीं वियोग--रोग की व्याधियाँ।

(६)

है वैधव्य-निषाद, फँसाये फन्द है,
बढ़ा विशेष विषाद, मोद--सब बन्द है!
शिथिल हुए सब अङ्ग, चेतना मन्द है,
उमड़ा शोक--समुद्र, कहाँ आनन्द है?
मलिन हुआ मुख-चन्द्र, उदासी छा गयी!
वर्षा-निशा समान, श्यामता आगयी।

(७)

गयी क्षीण कटि टूट, हौसला चूर है !
जीवन का अनुराग, हो गया दूर है।
जर्जर, सुभग शरीर, शोक भरपूर है।
किये हुए अधिकार, निराशा क्रूर है !
नगरी सी यह हाय ! लुटी है नागरी,
शफरी सी असहाय, हुई गुण आगरी !!

(८)

सुन्दरता-कल–कान्ति-विमिश्रित लालिमा—
हुई विशेष अशेष—रह गयी कालिमा !
पहले जहाँ सदैव, रही थी पूर्णिमा,
आज वहीं अधिकार किये अपना यमा !
सौख्य--सूर्य्य पति–सङ्ग हो चुका अस्त है,
सूखी कली समान, वपुष अति--व्यस्त है।

(९)

अतुलित लोचन लोल, ज्योति-द्युति-हीन हैं,
सूखा स्नेह--तड़ाग, तड़पते मीन हैं।
जीवन, जीवन-नाथ–ध्यान में लीन हैं,
मुरझे कमल--समान, सङ्कुचित—दीन हैं !
रहा नहीं वह तेज, न वह अभिमान है,
अपनी भी अब हाय, नहीं पहिचान है !

(१०)

बदल गया वह वेश—घट गयी है छटा,
सहकर सन्तत क्लेश, हृदय भी है फटा।

घेरे है अति घोर निराशा की घटा,
क्रन्दन कर दिन रात, कलेजा भी कटा।
पहने निपट मलीन पुराने वस्त्र हैं,
ये वैधव्य-विधान, व्याध के अस्त्र हैं!

(११)

गूंथ चुके बहु बार, जिन्हें प्राणेश हैं,
बिखर रहे अति व्यस्त, आज वे केश हैं।
बने हुए अब भार, बढ़ाते क्लेश हैं,
सन्यासिनी समान, बनाते वेश हैं!
विधवा पर यदि पूर्ण, हृदय में भक्ति हो,
तो अङ्कित कर चित्र, चितेरे! शक्ति हो।



५—विधवा-विनय।

(१)

प्रभुवर! अनाथ का साथ, तुम्हीं देते हो,
सुधि प्राणि-मात्र की प्रभो! तुम्हीं लेते हो।
निर्बल जन की लघु-तरणि, तुम्हीं खेते हो,
सब शिशुओं को सस्नेह, तुम्हीं सेते हो।
कैसे मैं अबला अबुध, गूढ़ गुण गाऊँ, ?
शरणागत हूँ, तव चरण-शरण मैं पाऊँ।

(२)

यदि तुम व्यथितों की व्यथा, बँटा सकते हो;
निज जन-मन से अज्ञान, हटा सकते हो;
अपने अङ्को को बढ़ा, घटा सकते हो;
अति कठिन कर्म का फन्द, कटा सकते हो;

तो धँस जावे यह धरा, सहर्ष समाऊँ,
शरणागत हूँ, तव चरण-शरण मैं पाऊँ।

(३)

दीनों की तुम हो लाज बचाने वाले,
दुष्टों को तुम हो नाच नचाने वाले।
हे गर्वीलों का गर्व लचाने वाले!
वर-दायक, जग का खेल मचाने वाले!

पाकर वनिता का जन्म न जग में आऊँ,
शरणागत हूँ, तव चरण-शरण मैं पाऊँ।

(४)

पति—परमेश्वर का ध्यान किया करती थी,
चरणामृत अमृत समान पिया करती थी।
सुश्रूषा कर सुख उन्हें दिया करती थी,
पति--सेवा--फल प्रत्यक्ष लिया करती थी।

अब साज सुमन की माल किसे पहिनाऊँ?
शरणागत हूँ, तव चरण-शरण मैं पाऊँ।

(५)

संसृति के सुख से सान सुलाया तुमने,
नित भूलभुलैयाँ डाल, भुलाया तुमने ।
माया के झोंके दिये—झुलाया तुमने,
फिर छीन लिया सब साज, रुलाया तुमने !
ऐ सर्वेश्वर ! किस भाँति तुम्हें अपनाऊँ ?
शरणागत हूँ, तव चरण-शरण में पाऊँ ।

(६)

सुर, मुनि जन जिसका मर्म नहीं पाते हैं,
सब वेद शास्त्र भी नेति नेति गाते हैं—
साधक जन कर साधना—हार आते हैं,
योगी भी, होकर विफल, लौट जाते हैं ।
मैं भटक रही हूँ नाथ ! कहाँ अब जाऊँ ?
शरणागत हूँ, तव चरण-शरण में पाऊँ ।

(७)

है विदित नहीं हे नाथ ! सुयुक्ति भजन की,
है नहीं भीतरी भक्ति, न शक्ति यजन की ।
सीखी थी केवल प्रीति—प्रतीति सजन की,
गति अवगत है सब तुम्हें विशेष स्वजन की ।
किस मुँह से—कैसे, तुम्हें कृपालु ! मनाऊँ ?
शरणागत हूँ, तव चरण-शरण में पाऊँ ।

(८)

कैसे साधूँ व्रत-नेम ? धैर्य्य-हीना हूँ ।
क्या दान-पुण्य की बात—निपट दीना हूँ !
कैसे हो तेरा मनन, शोक-लीना हूँ ,
मैं जन्म जन्म की हाय ! पाप पीना हूँ ।
अब कैसे बिगड़ी बात, विशेष बनाऊँ ?
शरणागत हूँ, तव चरण-शरण में पाऊँ ।

(९)

हा ! क्या निश्चय कर उन्हें छिपाया तुमने ?
किस आशय से यह दिवस दिखाया तुमने ?
मेरा सारा अभिमान मिटाया तुमने !
किन कर्त्तव्यों का ध्यान दिलाया तुमने ?
क्या क्रन्दन कर इस भाँति स्वदेश जगाऊँ ?
शरणागत हूँ, तव चरण-शरण में पाऊँ ।

(१०)

तुम वही करो—जो, नाथ ! तुम्हें रुचिकर हो,
कर्त्तव्य सुझाओ वही, जोकि शुचितर हो ।
झट पूर्ण करूँ—जो कार्य-भार मुझ पर हो ।
करुणामय ! करुणा करो, दीन-दुखहर हो !
फिर अन्त समय में प्रिय पतिलोक समाऊँ ;
शरणागत हूँ, तव चरण-शरण में पाऊँ ।

६—विधवा-विपत्ति ।

[१]

सहन कर सन्ताप मेरा क्षीण—दुर्बल—गात है,
और मन की वेदना की पूछना क्या बात है ?
शोक-संयुत-आयु मानो घोर काली रात है ।
मैं अकेली अधमरी हूँ, घातकों की घात है ।
हाय ! यों असहाय होकर, सब स्वयं सहती पड़ी—
नाथ ! मेरी हो रही है जांच क्यों ऐसी कड़ी ?

[२]

नीच अवसर ताकते हैं, घूमते ठग—चोर हैं;
दुष्ट फिर फिर घूरते हैं और पापी घोर हैं ।
ध्यान में बगुला-भगत हैं, सर्प-भक्षी मोर हैं ।
है कठिन इनसे उबरना, क्योंकि ये सब ओर हैं ।
देखिये व्यभिचारियों की है अनी कैसी अड़ी !
नाथ ! मेरी हो रही है जांच क्यों ऐसी कड़ी ?

[३]

आक्रमण करते निरन्तर, कुछ छिछोरे लोग हैं,
चित्त चञ्चल कर भुलाते, भूरि भव के भोग हैं ।
भस्म करना चाहते हैं, मानसिक बहु रोग हैं,
जुट रहे सब ओर से हा ! नाश के संयोग हैं ।
लग रही है हाय ! मुझ पर, अस्त्र-शस्त्रों की झड़ी,
नाथ ! मेरी हो रही है जांच क्यों ऐसी कड़ी ?

[४]

छिड़ रहा कठिनाइयों के साथ नित सङ्ग्राम है,
देख दुष्कृतियां खलों की हिल रहा इस्लाम है।
है वधिक-वैधव्य-बाधक, विविध-विध्न विधि वाम है,
अन्त के साधन जुटे हैं—ईश! क्या परिणाम है?
वेदना विकराल-वदना, हाय! मुँह फाड़े खड़ी,
नाथ! मेरी हो रही है जांच क्यों ऐसी कड़ी?

[५]

इस विरोधी वृन्द के अब, सब सहूँगी वार मैं,
क्या भला इन द्रोहियों से पा सकूंगी पार मैं?
हे प्रभो! कैसे उठाऊँ, इन दुखों का भार मैं?
धर्म-च्युत होकर हरे! क्या, मान लूं अब हार मैं?
क्योंकि यों टलती रहेगी, अन्त की कब तक घड़ी?
नाथ! मेरी हो रही है, जांच क्यों ऐसी कड़ी?

[६]

कुछ दया जिनमें नहीं है—शत्रु ऐसे क्रूर हैं,
लूट लेने पर तुले हैं, शक्ति-मद में चूर हैं।
स्नेह के, समवेदना के, भाव इनसे दूर हैं,
सर्प से बढ़ते इधर हैं, दर्प से भरपूर हैं।
आज तक तेरे सहारे, इन सबों से मैं लड़ी,
नाथ! मेरी हो रही है जांच क्यों ऐसी कड़ी?

[७]

स्व-वश करना चाहते हैं, मन्द मान्त्रिक मन्त्र से,
ताड़ते रहते मुझे हैं, नीच—तान्त्रिक तन्त्र से।
और लोलुप सोचते हैं, फांस लें षड्यन्त्र से,
दे रहे हैं कष्ट मुझको दुष्ट निज निज यन्त्र से।
धूर्त्तजन दिखला रहे हैं साधु बनकर निज अड़ी,
नाथ! मेरी हो रही है जांच क्यों ऐसी कड़ी?

[८]

मैं निपट अनभिज्ञ उनकी नीतियों से—चाल से,
दुर्जनों से, दुश्मनों से स्वार्थियों के हाल से।
अति अपरिचित हूँ जगत के निन्द्य माया-जाल से,
आ गयी हूं तङ्ग यों मैं, काल-व्याल-कराल से।
दीन, अनुभव-हीन हूं मैं इस सदन में ही खड़ी,
नाथ! मेरी हो रही है जांच क्यों ऐसी कड़ी?

[९]

फट चुके हैं वस्त्र सारे, न्यूनता आहारकी,
चीरती रहती कलेजा—रूक्षता व्यवहार की।
सालती रहती निरन्तर, नीति स्वेच्छाचार की,
हो चुकी है साथ मेरे, हद्द अत्याचार की!
अधिक अधम-विधर्मियों की दृष्टि है मुझ पर गड़ी,
नाथ! मेरी हो रही है जांच क्यों ऐसी कड़ी?

[१०]

जान कर मुझ को अशुभ सब नारियां शुभ काम में,
व्याधिनी सी मानती हैं वे मुझे निज धाम में।
थाह भी कुछ है घृणा की—'रांड़' आदिक नाम में,
मुझ अभागिन के लिए भी ठौर है किस ग्राम में ?
हाय! वे प्रियजन खड़े हैं ले कँटीली दृढ़ छड़ी,
नाथ ! मेरी हो रही है जांच क्यों ऐसी कड़ी ?

[११]

क्षुद्र, छलिया छल रहे हैं—ताप का आतङ्क है,
स्वजन मुँह मोड़े हुए हैं, भाग्य की भ्रू बङ्क है।
आलियों का बोल मानो बिच्छुओं का डङ्क है,
भाग कर जाती जिधर हूं—हा! उधर ही पङ्क है।
शक्तिमय! तू ही बचा ले अब विकलता है बड़ी,
नाथ! मेरी हो रही है जांच क्यों ऐसी कड़ी ?



७—विधवा-विवाह ।

(१)

न हो विश्वास ईश्वर में—न कुछ आधार हो जिसका,
कमाये निज करों से भी, न स्वल्पाहार हो जिसका ।
सुखों से चित्त चञ्चल हो, असद्व्यवहार हो जिसका;
तथा निज प्राणपति में भी, अधूरा प्यार हो जिसका ।
कहाना चाहतीहों जो—उन्हें सधवा कहाने दो,
सजन के नाम पर अब तो, हमें आंसू बहाने दो ।

(२)

लुभाती हो जिसे सज धज—जिसे श्रृङ्गार प्यारे हों,
सुहाते हों सु-शोभित पट, मनोहर हार प्यारे हों ।
फँसी हो भोग-लिप्सा में, मनो व्यापार प्यारे हों,
करे वह ब्याह फिर जिसको, वही व्यवहार प्यारे हों ।
अचल रख पूर्ण-पातिव्रत, सफल जीवन बनाने दो,
सजन के नाम पर अब तो, हमें आंसू बहाने दो ।

(३)

दिखाया दुष्प्रथाओं ने जिसे वैधव्य बचपन में,
लगावे पार खुद जीवन, न इतनी शक्ति हो मन में ।
सहे सन्ताप साहस से—न इतनी ताब हो तन में,
किसी कुलघन्त प्रेमी के बँधे वह प्रेम-बन्धन में ।

गये हैं रूठ वे हमसे, उन्हें हमको मनाने दो,
सजन के नाम पर अब तो हमें आंसू बहाने दो।

(४)

मिटायें वंश-मर्यादा, न जिनमें मानसिक बल हो,
गिरायें गर्भ जो छिपकर, कुकर्मों का बुरा फल हो,
न हो कुछ लाज सामाजिक--भरा हर बात में छल हो,
करें वे व्याह फिर अपना, उन्हें इस भांति ही कल हो।

विरह की आंच में तच कर, हमें यह तन गलाने दो,
सजन के नाम पर अब तो हमें आंसू बहाने दो।

(५)

फंसा लेंगे विधर्मी-जन—जहां इस बात का भय हो,
न जिससे निभ सके यह व्रत तथा सद्धर्म भी चय हो।
हृदय जिस कामिनी का, बस, अभी तक कामना-मय हो,
चुने वह वर पुनः अपना, उसी पर और की जय हो।

स्वपति की प्रीति- पूजा में, हमें अब लौ लगाने दो,
सजन के नाम पर अब तो, हमें आंसू बहाने दो।

(६)

जगत्पति छोड़ कर जिसको, हुई हो चाह नर-पति की,
न धोयी जा सके जिससे, मलिनता निज मलिन मति की,
न चिन्ता हो जिसे किञ्चित, अयश की, धर्म की, क्षति की,
किसी की भामिनी बन कर कहावे अनुचरी रति की।

हमें हृदयेश के यश की, सतत चरचा चलाने दो,
सजन के नाम पर अब तो, हमें आंसू बहाने दो।

(७)

अमृत- रस छोड़ कर जिसको हलाहल का रुचे प्याला,
सरस मधु हो अप्रिय जिसको, पिये वह अघमयी हाला ।
न प्यारा रत्न हो जिसको, बनावे कांच की माला,
स्वयंवर कर किसी वर को, बने वरनी वही बाला ।
निरन्तर स्नेह-सागर में, हमें कुछ दिन नहाने दो,
सजन के नाम पर अब तो, हमें आंसू बहाने दो ।

(८)

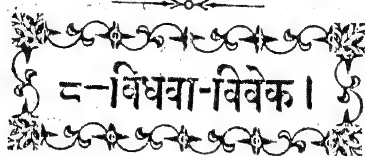
उतरना हो जिसे रुचिकर, सती के उच्चतम पद से,
स्वयं ही बस करे अपना, पतन वह मोह से--मद से,
बहाना हो जिसे स्वीकृत सुयश-रस अयश के नद से;
करे सम्बन्ध वह अपना, सुजन-सुख-सान्त्वना-प्रद से ।
अनेकों आपदाएं सह, स्व-पति--पुर में समाने दो,
सजन के नाम पर अब तो—हमें आंसू बहाने दो ।

(९)

बनावे निज सफल जीवन, सधे यह साधना जिससे,
करे पति-देव-आराधन, बने आराधना जिससे ।
सहे निज जाति गौरव पर, सहन हो यातना जिससे,
दबावे पूर्ण संयम से—दबे दुर्वासना जिससे ।
प्रबल-भ्रम योगियों का इस वियोगिनि को भगाने दो,
सजन के नाम पर अब तो, हमें आंसू बहाने दो ।

(१०)

जले यों स्नेह-दीपक में, स्वयं जिसको रुचे जलना,
चले इस भांति सिर के बल, जिसे स्वीकार हो चलना।
गले वैधव्य-वारिधि में, जिसे अच्छा लगे गलना,
मले यह भस्म वह ललना, जिसे उत्तम जँचे मलना।
हमें उन देवियों को ही, रुदन कर बस—जगाने दो,
सजन के नाम पर अब तो, हमें आंसू बहाने दो।



८—विधवा-विवेक।

(टेक)

प्रकृति का प्रियतम है परमेश,
वह सदैव पालन करती है,
उसका ही आदेश।

(१)

वह रहता है उसके घट में,
वह भी उसके अन्तर्पट में।
वह दिनरात मग्न रहती है,
बन चातकी उसी की रट में।
सुख में, दुख में—या सङ्कट में,
पड़ती नहीं व्यर्थ—झञ्झट में।
वह है यथा आंख की पुतली,
दृग—तारा प्राणेश।
प्रकृति का प्रियतम है परमेश।

(२)

वह उस पर बलि बलि जाती है;
उसकी ही प्रतिमा भाती है।
उसकी ही चरचा करती है,
उसके ही गुण-गण गाती है।
उसके ही मद में माती है;
सर्वश्रेष्ठ उसको पाती है।
उसकी रुचि--अनुरूप प्रेम से,
रचती है वह वेश।
प्रकृति का प्रियतम है परमेश।

(३)

लोचन उसके लगे ध्यान में,
श्रवण-शब्द तनु मग्न मान में।
मन में उसे मनन करती है।
बुद्धि विलीन विचार-ज्ञान में।
गिरा ग्रस्त है कीर्ति—गान में,
होती विलग न किसी आन में।
रक्षित है हृद्देश पूर्णतः —
करे न अन्य प्रवेश।
प्रकृति का प्रियतम है परमेश।

(४)

प्रिय-वियोग-आतप में जलती,
दृग-जल-वर्षा कर कर गलती।
शरद, शिशिर, हेमन्त-काल में,
पीपल—पत्र सदृश वह कंपती।

पिक बन बसन्त में सुध करती,
उसी के लिए जीती, मरती ।
निशि दिन एक समान शान्ति से,
सहती है सब क्लेश,
प्रकृति का प्रियतम है परमेश ।

(५)

वह उसका प्रिय तन, मन, धन है—
उसका वही प्राण-जीवन है ।
वह उसकी योगिनी बनी है,
उसका वही सुजान-स्वजन है ।
वही विभूषण और वसन है,
एक उसीका अवलम्बन है ।
अब कुर्जन दुःशासन उसके,
गहता कुञ्चित केश ।
प्रकृति का प्रियतम है परमेश ।

(६)

लू उसकी विकराल आह है,
सरिताएँ दृग--जल--प्रवाह है ।
पाला शीतल-स्वांस-सदृश है,
ज्वालामुखी-समान दाह है ।
उर-पुर हिम--अम्बुधि अथाह है,
धूप-चन्द्रिका-सदृश चाह है ।
सागर सा हिल्लोर मारता—
उसका प्रेमावेश ।
प्रकृति का प्रियतम है परमेश ।

(७)

साध्वी है, वह स्नेहनिरत है,
विषय-विलास-विनोद-विरत है।
लज्जा, शील, समाज-भार से,
दब कर स्वतः विशेष विनत है ।
दुर्वासना—विकार-विगत है,
उसका लीला-क्षेत्र वितत है।
नीरव भाषा में सुनती है—
वह उसका सन्देश;
प्रकृति का प्रियतम है परमेश ।

[८]

सचमुच उसका अटल नियम है,
उह ! उसमें कितना संयम है !
सीता, सती, शारदादिक से,
क्या वह किसी अंश में कम है ?
पति--हित उसका सारा श्रम है,
उसे न किसी बात में भ्रम है।
वह निश्चल, निश्छल—निर्मल है,
वहाँ न अघ—लवलेश,
प्रकृति का प्रियतम है परमेश ।

[९]

कर प्रसन्न अर्चन—वन्दन से,
वह पूजती सुमन—चन्दन से।
कर लेती है उसे स्ववश में,
वह सादर नयनानन्दन से,
कर सन्तुष्ट मनोरञ्जन से।
लेती बाँध प्रेम-बन्धन से,
वह है दिव्य गुणों की देवी,
कितनी दूरन्देश!
प्रकृति का प्रियतम है परमेश।

[१०]

वह न अन्य को चुन सकती है,
कुछ न किसी की सुन सकती है।
उसके लिये जीर्ण होकर वह,
शुष्क—दारुवत् घुन सकती है।
व्याकुल हो सिर धुन सकती है,
किन्तु उसी को गुन सकती है।
हो जाता है प्रलय—अन्त में,
मिलता है हृदयेश;
प्रकृति का प्रियतम है परमेश।



६—विधवा-व्रत।

(१)

आतप में या शरद्–शिशिर में,
कैसे कोकिल कूकेगी ?
क्या चातकी गर्त--जल पीकर,
स्वाति--स्नेह से चूकेगी ?
क्या कुमुदिनी कुमुद–वल्लभ बिन,
अरुणोदय में फूलेगी ?
कैसे मीन मञ्जु--मानस तज,
मरुस्थलों में भूलेगी ?
कलित कलाधर की किरणों से, क्या कमलिन विकसित होगी ?
भला कभी क्या हिन्दू विधवा, दृढ़-व्रत से विचलित होगी ?

(२)

क्या आकर्षित कर सकता है,
कोई सुभग शरीर उसे ?
क्या किञ्चित ललचा सकता है,
आकर त्रिविध-समीर उसे ?
कर न सकेंगे कभी रञ्च भर,
मनोविकार अधीर उसे।
पाता हूं मैं सदा एक रस,
शान्त, दान्त, गम्भीर उसे।
कुल--गौरव या आत्मग्लानि से, वह तुरन्त विगलित होगी।
भला कभी क्या हिन्दू विधवा दृढ़ व्रत से विचलित होगी ?

(३)

क्या आमोहित कर सकता है,
खग-गण का कलरव उसको?
सम्भव नहीं—विभव से अपने,
लुभा सके यह भव उसको?
द्रवित नहीं कर सकता दुख दे,
दारुण-दूषण दव उसको।
चञ्चल नहीं बना सकता है,
नयनागर नट नव उसको।
आजीवन उसकी दिनचर्या, दृढ़—निश्चित—नियमित होगी,
भला कभी क्या हिन्दूविधवा दृढ़-व्रत से विचलित होगी?

(४)

लुब्ध नहीं कर सकती उसको,
सुन्दरता नन्दन-बन की।
पा सकते हैं नहीं क्षुद्र जन,
थाह कभी उसके मन की।
उत्सुक करे उसे उकसा कर,
शक्ति नहीं उद्दीपन की।
भुला नहीं सकती भोगों में,
चाह उसे उज्जीवन की।
उसकी आहों के प्रभाव से, विघ्न-घटा विघटित होगी,
भला कभी क्या हिन्दूविधवा दृढ़-व्रत से विचलित होगी?

(५)

क्षुब्ध नहीं कर सकती क्षण भर,
वह पीयूष-पिपास उसे।

विलग नहीं कर सकती व्रत से,
मधु की अतुल मिठास उसे।
किस बल से पथ-भ्रष्ट करेगा,
पर का पूर्ण विकास उसे ?
मार नहीं सकता ममता से,
विष-वत् विषय-विलास उसे।
बस, विनोद के अवसर पर वह, विलख विलख विलपित होगी।
भला कभी क्या हिन्दू विधवा, दृढ़-व्रत से विचलित होगी ?

(६)

क्या सन्देश सुना सकती हैं,
अब आकर उसको अलियाँ ?
क्या वह हृदय हिला सकती हैं,
हिलहिल कर प्रमुदित कलियाँ ?
क्या निज रङ्ग जमा सकती हैं,
उस पर वे लतिकावलियाँ ?
खींच नहीं सकतीं उसके पग,
सुरभित सुघर कुञ्ज गलियां।
उसकी मति-गति नियति-मार्ग पर निगमागम निगदित होगी,
भला कभी क्या हिन्दू विधवा, दृढ़-व्रत से विचलित होगी ?

(७)

हो सकती है ऐसी ललना,
दुःखों से भयभीत कभी ?
कर सकती है उसे कामना,
नियमों से विपरीत कभी ?

क्या सकती है घृणित वासना,
उसके मन को जीत कभी?
मुग्ध नहीं कर सकता उसको,
कैसा भी सङ्गीत कभी ।

क्या चिर-विरह-विदग्ध-हंसिनी, बक-दल लख विहँसित होगी ?
भला कभी क्या हिन्दू विधवा, दृढ़-व्रत से विचलित होगी ?

(८)

कौन जमा सकता है अपना,
अनुचित निन्द्य प्रभाव वहाँ ?
बस—आहार विहार आदि का,
है सब भाँति अभाव वहाँ ।
काम, क्रोध, मद, लोभ—मोह से,
सचमुच नहीं लगाव वहाँ ।
है अपूर्व साहस, संयम का—
समुचित जमा जमाव वहाँ ।

दुराचारियों के द्वारा जब दुरात्मता विरचित होगी
भला कभी क्या हिन्दू विधवा, दृढ़-व्रत से विचलित होगी ?

(९)

चित्त चुराले जो विधवा का—
ऐसा कोई चोर नहीं ।
पापी—छली— दुर्गुणी — दुर्जन,
तक सकते उस ओर नहीं ।
छल—प्रपञ्च उस तपस्विनी का,
छू सकता है छोर नहीं ।

कलुष-कलेवर कभी उस तरफ़,
कर सकते दृग-कोर नहीं ।
अपने सच्चरित्र बल से वह, निरालम्ब विचरित होगी,
भला कभी क्या हिन्दू विधवा, दृढ़व्रत से विचलित होगी ?

(१०)

उसे मोह सकते हैं कैसे,
पट—भूषण—श्रृङ्गार कहीं ?
उसे जलायेंगे किस मुँह से,
अगणित अघ-अङ्गार कहीं ?
उसका यह व्रत हर सकता है,
रत्नों का भण्डार कहीं ?
ऐसा उच्चादर्श दूसरा—
दिखलावे संसार कहीं !
उसका यह व्रत देख तपस्या, भी मन में विस्मित होगी,
भला कभी क्या हिन्दू विधवा दृढ़व्रत से विचलित होगी ?

नोट—हम 'विधवा' के ठीक वही अर्थ मानते हैं जो महात्मा गांधी ने नवजीवन में लिखा है—"विधवा वह है जिसका पति मर चुका हो—वह स्त्री जिसने उचित अवस्था में अपनी इच्छा या सम्मति से विवाह किया हो और जो स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध से परिचित हो गई हो। इस व्याख्या में उन किशोरवय की बालिकाओं का समावेश हो ही नहीं सकता और न होना चाहिए जो अक्षत-योनि हैं।"

— लेखक

ॐ ॐ ॐ

१०—विधवा की विशेषताएं।

(१)

अहा! आदर्श-मय जिसमें, अक्षय अनुराग पाते हैं;
मनुज--समुदाय से जिसमें, अनोखा त्याग पाते हैं।
अभागिन मान कर जिसमें, सुभग सब भाग पाते हैं;
सुलगती धर्म की जिसमें, अलौकिक आग पाते हैं।
उचित इस भाँति क्या हमको, उसी का दिल दुखाना था?
उसे तो मान कर देवी, सदा मस्तक झुकाना था।

(२)

विचर कर भोगियों में जो, विलग है भूरि--भोगों से,
भयानक रोगियों में जो, बची है राज--रोगों से।
बसी उद्योगियों में जो, पृथक हो दुष्ट लोगों से,
तथा सब योगियों में जो, रही है श्रेष्ठ योगों से—
उसी की युक्ति से मन को, तनिक ऊपर उठाना था,
उसे तो मान कर देवी, सदा मस्तक झुकाना था!

(३)

सुखद वैधव्य-जीवन के, नियम अपना लिये जिसने,
उभय कुल के, सुकर्मों से, समुज्वल मुख किये जिसने।
ख़ुशी या शोक से प्याले, हलाहल के पिये जिसने;
स्वयं ही स्वामि-चरणों पर, चढ़ा सब सुख दिये जिसने—
उसी पर गर्व कर जग को, प्रपञ्चों से छुड़ाना था,
उसे तो मान कर देवी, सदा मस्तक झुकाना था।

(४)

अधिक हिम-राशि से शीतल, समझते ताप हैं जिसको,
प्रबल पावक-सदृश लख कर, झिझकते पाप हैं जिसको।
विदित वरदान से होते, भयानक शाप हैं जिसको,
वही है पुण्य की प्रतिमा—सताते आप हैं जिसको।

उसी से सीख कर सुख के, सकल साधन जुटाना था;
उसे तो मान कर देवी सदा मस्तक झुकाना था।

(५)

जिसे सत्कर्म में श्रम से, सदा संलग्न पाते हो—
जिसे विषयी-विलासी बन, अहा! तुम भूल जाते हो।
जिसे, मद-मोह-माते हो, डिगाते हो—जलाते हो,
जिसे निर्लज्ज हो तकते, नहीं मन में लजाते हो!

उसी में भावनाएँ पा, तुम्हें भावुक लुभाना था?
उसे तो मान कर देवी, सदा मस्तक झुकाना था।

(६)

यहाँ से ठीक स्वामी तक, लगी दृढ़ डोर है जिसकी,
इधर काया पड़ी है—पर, उधर दृग-कोर है जिसकी।
पुरातन-धर्म की श्रद्धा, सखी चित-चोर है जिसकी,
तथा परिचारिका प्यारी, व्यथा अति घोर है जिसकी।

उसी के दिव्य-दर्शन से, हमें लोचन जुड़ाना था,
उसे तो मान कर देवी, सदा मस्तक झुकाना था।

(७)

बिछायी सेज काँटों की, उसी पर आप सोती है,
हँसी की है हँसी करती, खुशी से रोज़ रोती है।
उबलते अश्रुओं से जो, विमल मुख और धोती है,
सुनाता जो उसी की सुन, विकल हो मौन होती है।

उसी को सान्त्वना के कुछ, वचन सादर सुनाना था;
उसे तो मान कर देवी, सदा मस्तक झुकाना था।

(८)

सती की शक्ति का जग को, मिला परिज्ञान है जिससे,
परम पति-भक्ति का होता, प्रकट अभिमान है जिससे;
पुनर्जन्मादि की अब तक, बनी पहिचान है जिससे,
हमारी जाति में जीवित, रहा बलिदान है जिससे।

स्वयं यों डूब कर प्यारे! उसे भी क्या डुबाना था?
उसे तो मान कर देवी सदा मस्तक झुकाना था।

(९)

सभी साहस भरे सात्विक, प्रशंसित कार्य हैं जिसके;
बचाया आर्य-गौरव यों, ऋणी सब आर्य हैं जिसके।
परम पावन चरण दोनों—दृगों में धार्य हैं जिसके,
तपस्वी, ब्रह्मचारी या, यती परिचार्य हैं जिसके।

महा सम्मान से उसका हमें सब ऋण चुकाना था,
उसे तो मान कर देवी सदा मस्तक झुकाना था।

(१०)

पुनः प्राणेश से मिलना, महत्तम ध्येय है जिसका—
भरा सद्भाव से जीवन, सरल—श्रद्धेय है जिसका।
सुनाऊँगा कहां तक मैं—सुयश सब गेय है जिसका,
चरित शुचि ज्ञेय है जिसका—अपरिमित-श्रेय है जिसका।

न उस सन्यासिनी को यों, भुलाना था—रुलाना था!
* उसे तो मान कर देवी सदा मस्तक झुकाना था।



* "वैधव्य को मैं हिन्दू-धर्म का भूषण मानता हूं। जब मैं विधवा बहनों को देखता हूं तब मेरा सिर अपने आप उनके चरणों पर झुक जाता है। विधवा का दर्शन मेरे नज़दीक अपशकुन नहीं ... प्रातःकाल उसका दर्शन करके मैं अपने को कृतार्थ मानता हूं...उसके आशीर्वाद को मैं एक प्रसाद मानता हूं...उसे देख कर मैं तमाम दुःखों को भूल जाता हूं...विधवा के मुक़ाबिले में पुरुष एक पामर प्राणी है। विधवा के धैर्य का अनुकरण असम्भव है।" "महात्मा गान्धी"

हिन्दी नवजीवन
[१५ मई सन् १६२४]

* * *

११—विधवा की वृत्ति।

(१)

अगणित नरों की हाय! भिक्षा-वृत्ति है इस देश में,
भिक्षुक अनेकों देख पड़ते हैं अनेकों वेश में।
गौरव—प्रतिष्ठा खो चुके हैं, तुष्ट हैं सुख-लेश में,
आश्रय पराया चाहते हैं, हैं नहीं आवेश में!
पाया नहीं है जन्म केवल पेट भरने के लिए,
ये हाथ ईश्वर ने दिये हैं काम करने के लिए।

(२)

कर्तव्य--च्युत दस दस नरों का, एक नर पर भार है,
आहार दुर्लभ हो रहा है—पेट पर यह मार है।
जीवन--समर में कुछ नरों ने मानली, बस, हार है,
संसार में इन कायरों से पूछिये क्या सार है।
जीवन नहीं पाया जगत में, व्यर्थ मरने के लिए,
ये हाथ ईश्वर ने दिये हैं, काम करने के लिए।

(३)

पौरुष--रहित हैं, क्या पुरुष हैं, और के आधार से?
अपना उदर भरते सदा हैं, और के आहार से।
लज्जा नहीं आती उन्हें है, इस घृणित व्यापार से,
संसार--सागर तर रहे हैं अन्य के पतवार से!
नर-रूप अति--उपयुक्त है, भव-सिन्धु तरने के लिए;
ये हाथ ईश्वर ने दिये हैं, काम करने के लिए।

(४)

अवसर गँवाते हैं अमित जन व्यर्थ फँस कर भोग में,
और कुछ नर सड़ रहे हैं दासता के रोग में।
हैं अमित आते नहीं जो, देश के उपयोग में,
दिन गिन रहे हैं अन्त के कुछ, शौक़ से सहयोग में।
अति सुदृढ़ उर हमको मिले हैं, धैर्य धरने के लिए।
ये हाथ ईश्वर ने दिये हैं, काम करने के लिए।

(५)

है नारियों की तो नरों से भी गयी बीती दशा,
उन पर चढ़ा रहता सदा है, भोग--लिप्सा का नशा।
यों ही निपट--निर्बुद्धि बहनें, हो रही हैं परवशा,
ऊढ़ा, अनूढ़ा हैं बनी कुछ, और कुलटा कर्कशा।
सुन्दर वपुष हैं दूसरों के क्लेश हरने के लिए,
ये हाथ ईश्वर ने दिये हैं, काम करने के लिए।

(६)

श्रीमन्त-पत्नी के लिए क्या काम करना पाप है?
उनके विचारों से उन्हीं को हो रहा सन्ताप है।
कैसे सुनें उपदेश वे? यह शारदा का शाप है,
परिणाम इस आलस्य का, बस, घोर पश्चात्ताप है।
लोचन मिले हैं क्या पराये कौर तकने के लिए?
ये हाथ ईश्वर ने दिये हैं काम करने के लिए।

(७)

आमरण वस्त्राभरण की ही हाय! रहती चाह है,
इन देवियों से देवियों की---ठीक उलटी राह है।
अपवाद फैला है जगत में—क्या उन्हें परवाह है?
विश्वेश! इनके से पतन की भी भला कुछ थाह है?

उपयुक्त है क्या भव्य--वाणी, व्यर्थ बकने के लिए ?
ये हाथ ईश्वर ने दिये हैं, काम करने के लिए।

(८)

आहार, निद्रा आदि में ही जन्म खोना व्यर्थ है,
नर-जन्म में पशु--जन्म से क्या भेद है ? क्या अर्थ है ?
पल भर विताना निष्प्रयोजन—हाय ! घोर अनर्थ है,
जीवित मृतक-वत् है बनी वह जो पड़ी असमर्थ है।
दो दो चरण हैं प्राणियों को क्या कुचलने के लिए ?
ये हाथ ईश्वर ने दिये हैं काम करने के लिए।

(९)

श्रम कर निरन्तर कार्य में ही मन लगाना चाहिए,
जगकर स्वयं, निज आलियों को भी जगाना चाहिए।
अनमोल रत्नों को ठगों से क्या ठगाना चाहिये ?
चर्खा चला कर अब नरों का भ्रम भगाना चाहिए।
श्रुति--पुट बने हैं क्या किसी के बोल सुनने के लिए ?
ये हाथ ईश्वर ने दिये हैं काम करने के लिए।

(१०)

थोड़ा समय है--शीघ्र ही अब, चेत जाना है हमें,
अर्द्धाङ्गिनी का अर्धआसन, शीघ्र पाना है हमें।
सतयुग यहां पर सत्य-बल से, फेर लाना है हमें,
बहिनो तुम्हारी शक्तियाँ, फिर आज़माना है हमें।
वैधव्य है कठिनाइयों का दर्प दलने के लिए,
ये हाथ ईश्वर ने दिये हैं, काम करने के लिए।

——०:०:०——



१२—विधवा-विनोद ।

[१]

संसार के दुखों का, अवसान है जहाँ पर—
कितना भयावना है !!
मेरे सकल सुखों का, शुचि स्रोत है वहाँ पर—
यह भव्य भावना है।
सर्वेश ! बस इसी को, मैं सर्व-श्रेष्ठ समझूँ—
यह एक कामना है।
रोऊँ न सुख किसी को, दुख ही यथेष्ट समझूँ,
जिसका कि सामना है।

[२]

इन विकट सङ्कटों में, अभिव्यक्त हो रही है
प्रिय कान्ति शान्ति ! तेरी।
इन निपट कण्टकों में, परित्यक्त हो रही है
सब भ्रान्ति-श्रान्ति मेरी।
ये घोरतम घटाएँ, मन मार मार जिनको
—मैंने सदैव देखा।
दिखला रहीं छटाएँ, लख बार बार इनको,
सुख का रहा न लेखा।

[३]

मम उर खिला रहीं ये, शुचिता दया-क्षमा सी
सरला सहेलियाँ हैं।
धीरज दिला रहीं ये, वाणी उमा, रमा सी
सबला नवेलियाँ हैं।
मुझको जिला रहीं ये, दृढ़ता—उदारता सी
जो चारु चेलियाँ हैं।
प्रभु से मिला रहीं ये, समता—सुशीलता सी
जो स्वच्छ सेलियाँ हैं।

[४]

प्रतिदिन निहार कर मैं, बिन दिव्य देवियों के
नर-वृन्द का बिचलना,
हँसती विचार कर मैं, बिन विज्ञ सेवियों के
यों सेव्य का फिसलना।
परिहास का विषय है, धर मञ्जु मौर सिर पर
फिर ब्याह हित निकलना !
देता नहीं विजय है, यों बार बार गिर कर
कामाग्नि से पिघलना।

[५]

लखकर सुमुखि सुहागिन, परिवार में किसी के
निर्भीक नारियों को।
अथवा सुभग सुहासिन परिचार में किसी के
उन प्राण-प्यारियों को।

सब भाँति से सुखी हूँ, पाकर जहाँ तहाँ मैं
कमनीय क्यारियों को।
कैसे कहूँ—दुखी हूँ, जब देखती यहाँ मैं,
दयनीय कारियों को?

[६]

हैं अति प्रसन्न करतीं, वर वीर विदुषियों के।
बलिदान की कथाएँ ।
आनन्द-सिन्धु भरतीं, उत्कृष्ट युवतियों के
अभिमान की कथाएँ ।
पढ़कर किसी सती का, जीवन-चरित्र सारा
होतीं शमन व्यथाएँ ।
है धन्य श्रीमती का, वह प्रण पवित्र प्यारा—
की दूर कुप्रथाएँ !

[७]

चित्तौर-स्वामिनी सी, जो त्रास-दायियों से
निज धर्म हैं बचातीं।
बन सिंह-भामिनी सी, जो आततायियों से
सङ्ग्राम हैं मचातीं।
संसार को छुड़ातीं, जो सब बुराइयों से,
हैं दुष्ट को छकातीं।
मेरा हृदय जुड़ातीं, जो लड़ कुभाइयों से,
निज शौर्य हैं जँचातीं।

[८]

पुलकित शरीर होता, जब स्वप्न में दिखाते,
मुख चन्द्र आर्य अपना।

क्यों मन अधीर होता, जब वे स्वयं सिखाते,
'कर पूर्ण कार्य्य अपना'?
सुनकर यदा कदा मैं, उनके मनोज्ञ मुख से,
'बस सावधान रहना,'
सन्तुष्ट हूँ सदा मैं; स्वर्गीय स्वीय सुख से,
है व्यर्थ और कहना।

[६]

गद्गद् न हो हृदय क्यों, उनकी रहीं नहीं जब
अवशिष्ट कामनाएँ ?
होंगे न वे सदय क्यों ? पूरी हुईं कहीं अब,
उनकी सुलालसाएँ ?
दर्शन दिया उन्होंने, निर्मूल हो रही हैं,
बरज़ोर यातनाएँ।
अपना लिया उन्होंने, अब फूल लग रही हैं
घनघोर आपदाएँ।

[१०]

क्या भय रहा किसी का? वे आप दे रहे हैं,
दिनरात साथ मेरा।
बल है अहा! इसी का, वे प्रेम से गहे हैं
मज़बूत हाथ मेरा।
अब चाहिए न रोना, यह बात है खुशी की
है उच्च माथ मेरा।
दुख चाहिए न होना, मैं हो चुकी उसी की—
वह प्राणनाथ मेरा।



१३—विधवा-विभूति

(१)

क्या अब निज अधिकार, नारियाँ खो सकती हैं ?
अपनाकर अविचार, अहर्निशि रो सकती हैं ?
बढ़े पाप-परिवार, और हम सो सकती हैं ?
बिना किये प्रतिकार, शान्त क्या हो सकती हैं ?

कर सकती हैं देश में, सहसा भीषण क्रान्ति हम ।
रह सकती हैं क्लेश में, पड़ कर अरि की भ्रान्ति हम ।

(२)

अलङ्कार आहार, हेतु क्या चिन्तित होंगी ?
बिना वसन - आगार, क्षुब्ध क्या किञ्चित होंगी ?
राज-साज श्रृङ्गार — स्नेह से सिञ्चित होंगी ?
बना प्रणय व्यापार, न ऐसी निन्दित होंगी ।

जग में कहीं अनीति लख, क्या लेंगी विश्राम हम ?
पति में प्रीति – प्रतीति रख, होंगी बस निष्काम हम ।

(३)

काम-कला की मूर्त्ति, न अब कामिनी बनेंगी,
कर देंगी क्षति--पूर्ति, सदन-स्वामिनी बनेंगी,
गृह – प्रबन्ध में दक्ष, भव्य भामिनी बनेंगी,
होगा ऊँचा लक्ष, अग्रगामिनी बनेंगी,

सघन घनों के अङ्क में, दमकेंगी बन दामिनी ।
दिवा दिवाकर सङ्ग में, सोम सङ्ग में यामिनी ।

(४)

कह कुलटा कर्कशा, न नर अपमान करेंगे,
रख कर यों परवशा, न अब अवसान करेंगे ।
उतरेगा वह नशा, उचित सम्मान करेंगे ।
सुधरेगी अब दशा, कृपा भगवान करेंगे ।

शूद्र, मूर्ख, पशु-ढोल सम, अब हम रह सकतीं नहीं ।
ऐसे कड़ुए बोल हम—जीवित सह सकतीं नहीं ।

(५)

अब हम सब का भाल, न अघ से अवनत होगा,
सीधी-सादी चाल, स्वामि-सेवा मत होगा ।
जग का माया-जाल, हमें सब अवगत होगा,
सम्मुख होगा काल, अटल सन्तत सत होगा ।

आदि शक्ति से कम नहीं बहिनो ! हम में शक्ति है ।
ईश-भक्ति से कम नहीं, पातिव्रत—पति-भक्ति है ।

(६)

आया-जीवन-मर्म, कभी अस्पष्ट न होगा,
बात बात में धर्म, हमारा नष्ट न होगा ।
क्या होगा शुभ कर्म, सहन यदि कष्ट न होगा ?
होकर निर्बल नर्म, कौन पथ-भ्रष्ट न होगा ?

इस पर, शुद्धाचार पर, अब न कहीं सन्देह हो।
हाट-बाट, सङ्कर, नगर, बन बीहड़ या गेह हो।

(७)

वीर-वधू, बलवती, सती बालिका बनेंगी।
वीर-प्रसू, फलवती, विश्व—पालिका बनेंगी।
रूपवती—गुणवती — दीपमालिका बनेंगी।
सत्यवती, प्रणवती, क्रूर कालिका बनेंगी।
दृढ़ सतीत्व ही शस्त्र है, साहस ही श्रङ्गार है।
अतुल आत्म-बल अस्त्र है, समराङ्गण संसार है।

(८)

माधव होंगे लोग; नारियाँ होंगी राधा,
क्या संयोग वियोग, डाल सकता है बाधा?
स्वयं छोड़ सुख-भोग, विश्व-हित का व्रत साधा।
दोनों का उद्योग, रहेगा आधा आधा।
पुरुष दाहिने अङ्ग हैं, बायाँ हैं बामाङ्गिनी।
शोभित सन्तत सङ्ग हैं, आर्यपुत्र—अर्द्धाङ्गिनी।

(९)

प्राण-सदृश प्राणेश, प्रियतमा काया होंगी।
होंगे नर वर वेश, नारियाँ छाया होंगी।
कर्मवीर हृदयेश, जीवनी जाया होंगी।
पुरुष प्रबर परमेश, प्रेयसी माया होंगी।

वे होंगे हृदयेश तो, हम होंगी हृदयेश्वरी।
वे होंगे प्राणेश तो, हम होंगी प्राणेश्वरी।

(१०)

होगा यों अनुसरण—योग्य आवरण हमारा।
सदाचरण उपकरण, शौर्य आभरण हमारा।
होगा अब अनुकरण, देख आचरण हमारा।
देगा अशरण - शरण, साथ आमरण हमारा।
पिंजड़ों में चिड़ियाँ बनी, अब हम पल सकतीं नहीं।
क्या सतीत्व-साहस सनी, खल-दल दल सकतीं नहीं?

(११)

विधवाएँ स्वच्छन्द, रहेंगी मीरा बनकर।
सुख दुख में सानन्द, धरणि सी धीरा बनकर।
तोड़ेंगी भव-फन्द, विजयिनी वीरा बनकर।
तेज न होगा मन्द, वदन का हीरा बनकर।
'इस प्रकार उद्धार कर', यही आर्य-आदेश था।
थे उदार उद्गार पर, मुझ में कम आवेश था!



१४—विधवा-विजय।

(१)

वृद्ध हुए हैं, किन्तु, व्याह की जिन्हें चाह है;
मनमानी तिय वरें, धर्म की खुली राह है।
बढ़ी विषय-वासना, कहाँ तक—नहीं थाह है;
परकीया सुन्दरी, देख कर जिन्हें डाह है।
विधवे! तेरे सामने, उनके सिर झुक जायँगे;
क्या उत्तर देंगे तुझे? स्वयं शब्द रुक जायँगे।

(२)

जो जन हैं दे चुके, जलाञ्जलि वर्णाश्रम को;
बदल लिया है ख़ूब, जिन्होंने जीवन-क्रम को।
समझ लिया है व्यर्थ जिन्होंने धार्मिक-श्रम को—
कर देगी तू दूर, अन्त में उनके भ्रम को।
तेरे अतुलित तेज से, मुख फ़ीका हो जायगा;
क्या उनका फिर रुदन से, अघ-टीका धो जायगा?

(३)

जो करते हैं व्याह, बालकों का बचपन में;
है जिनकी लालसा, लगी वैवाहिक धन में;
सूझा स्वेच्छाचार, जिन्हें अपने यौवन में;
छिप जायेंगे कहीं, स्वतः, लज्जित हो मन में।

निश्चय, तेरी आह से, दूषण-वन जल जायगा,
तेरे अन्तर्-ताप से गिरिवर भी गल जायगा।

(४)

कूड़ा क्रूर-कुकर्म, दुर्गुणों का दलदल है;
परम्परा का पङ्क, कुचालों का कलकल है।
मकर-मत्स की भाँति, दुर्जनों का छलबल है,
अति ही मलिन विचार, मनों में मानो मल है।
तेरे अश्रु-प्रवाह से, सारा मल बह जायगा;
मानस-सुजन-समाज में, निर्मल जल रह जायगा।

(५)

पाकर तव आदेश, शीघ्र सतियाँ सम्हलेंगी;
समझेंगी कर्तव्य, स्वामियों से मचलेंगी।
निश्चित कर आदर्श, दशा अपनी बदलेंगी;
निश्चय हो कृतकृत्य, विश्व-विश्रुत-यश लेंगी।
तेरे इस उद्योग से, नयी सृष्टि हो जायगी;
फिर तुझ पर सुरलोक से, पुष्प-वृष्टि हो जायगी।

(६)

बदल जायगा नारि-वृन्द का रहना सहना;
पायेंगी आनन्द, पहिन कर सच्चा गहना।
सीखेंगी पति-प्रेम, क्षीर-सागर में बहना;
देंगी कर यह याद, दुर्दशा उन्हें उलहना।
तेरे आर्त-निनाद से, सुप्त देश जग जायगा;
सत्कृति में पग जायगा, कलियुग भी भग जायगा।

(७)

जिन पुरुषों ने तुम्हें, बनाया है पग-जूती;
समझे हैं जो तुम्हें, मूर्ख रखना मज़बूती!
पाला पोषा तुम्हें, मानकर सन्तत तूती;
अथवा मृदुल-मशीन, सती, सन्तान-प्रसूती।
वे अब तक भ्रम में रहे, उनका भ्रम हर जायगा;
तेरे इस आदर्श से,—पापी भी तर जायगा।

(८)

विफल न होगा कभी, करुण क्रन्दन कल्याणी!
इतने बेसुध नहीं, देवि! नर-नामक प्राणी।
है मुझ को विश्वास, सुनेंगे तेरी वाणी,
हैं तुझ पर अनुकूल, सत्यतः, शारंग-पाणी।
तेरे अति--सन्ताप से भू-मण्डल फट जायगा;
स्वेच्छाचारी नीच का अब घमण्ड घट जायगा।

(९)

आयेंगे जब सुदिन, दुखद दुर्दिन गत होंगे;
पतिव्रता नारियाँ, पुरुष पत्नी-व्रत होंगे।
सने स्नेह में और, सुकर्मों में रत होंगे।
होंगे वे दिन शीघ्र, जब कि सब अभिमत होंगे।
कीर्ति--ध्वजा तेरी शुभे! नित नभ में फहरायगी;
तेरे यश--जल से भरी, नभ गङ्गा लहरायगी।

(१०)

अमरलोक से न्यून, सुघर नर लोक न होगा,
सब शुभ होगा, नष्ट लोक परलोक न होगा।
फैलेगा आलोक, कहां अपलोक न होगा,
पुत्र-शोक, पति-शोक—शोक पर शोक न होगा।
तव तप- बल से सहज में, इन्द्रासन हिल जायगा;
फिर तुझ को पति सङ्ग में, सिंहासन मिल जायगा।

१५—विधवा विसर्जन।

[१]

अतुलित अनुपम त्याग दिखाया, अद्वितीय बलिदान किया;
किया योग यह वियोगिनी बन, पर न कभी अभिमान किया।
अपनी आहुति दी दृढ़ता से, प्रेम-यज्ञ सविधान किया;
कर व्रत नेम चरम-सीमा तक, भूतल से प्रस्थान किया।
कीर्ति अमर हो गयी अन्त में,
नष्ट हुई नश्वर काया।
सज कर उसके लिए स्वर्ग से,
है सुन्दर विमान आया।

[२]

तप बल से उस परम उच्चतम, पद पर तपस्विनी ! जाओ;
कर्म वचन मन एक बना कर, जाओ मनस्विनी ! जाओ।
सच्ची सन्यासिनी ! स्वर्ग को, जाओ यशस्विनी ! जाओ;
नभ में बहो गगन–गङ्गा बन, पावन पयस्विनी ! जाओ।
लज्जित हुई स्वयं निज मन में,
मायाविनी--महा–माया ।
सज कर उसके लिए स्वर्ग से,
है सुन्दर विमान आया।

[३]

वह उपयोगी पाठ निरन्तर, पढ़ती और पढ़ाती थी,
क्रम क्रम से वह कर्म-क्षेत्र में, बढ़ती और बढ़ाती थी।
भाँति भाँति के कर--कौशल वह, सिखती और सिखाती थी
महिलाओं के लिए बहुत कुछ, लिखती और लिखाती थी।
बड़े भाग्यशाली पुरुषों को,
मिलती है ऐसी जाया।
सज कर उसके लिए स्वर्ग से,
है सुन्दर विमान आया !

[४]

निर्भय हो महिला--समाज हित, किया जन्म अर्पण उसने,
सदा प्रस्वेद और दृग–जल से, किया स्वामि--तर्पण उसने।
प्रमदाओं को आत्मतत्व का, दिखलाया दर्पण उसने,
वज्र–सदृश कर कड़ा कलेजा, सहा काम—कर्षण उसने !

वह तरुणी भी तर सकती थी,
जो छूले उसको छाया ।
सज कर उसके लिए स्वर्ग से,
है सुन्दर विमान आया ।

[५]

सदुपदेश देकर जिसने निज, बहिनों का उपकार किया,
शिशुओं को सद्भाव सिखाया. व्यथितों का उपचार किया ।
अगणित वनिताओं में जिसने, प्रिय--पति--प्रेम--प्रचार किया,
पार स्वयं अपने पौरुष से, पारावार अपार किया ।

परम धाम में प्राणनाथ के,
साथ परम पद यों पाया ।
सज कर उसके लिए स्वर्ग से,
है सुन्दर विमान आया ।

[६]

प्रिय पति के अवशिष्ट कार्य को, स्वयं पूर्ण करना सीखें,
मरना सीखें स्वामि-भक्ति में, मर कर भी तरना सीखें ।
अबलाओं को सिखलाया है—पातिव्रत रखना सीखें,
हरना सीखें पाप--पुञ्ज को, स्नेह--सुधा चखना सीखें ।

मृत्युलोक में जिस महिला ने,
यह प्रेमामृत बरसाया ।
सज कर उसके लिए स्वर्ग से,
है सुन्दर विमान आया ।

[७]

वह गृह-कार्य कभी करती थी, और कभी कपड़े सीती,
देखी गयी विरह विह्वल वह, रोती या आँसू पीती।
वही जानती थी निज मन में, जो कुछ थी उस पर बीती,
हिम्मत हारी नहीं कभी वह, रही यहाँ जब तक जीती।
अन्त समय में हुआ इसी से,
भली भाँति सब मन भाया।
सज कर उसके लिए स्वर्ग से,
है सुन्दर विमान आया।

[८]

कल्प सदृश बीते उसके क्षण, आयु अधिक विस्तीर्ण हुई,
उसके जीवन की पगदण्डी, विकट--कण्टकाकीर्ण हुई।
उसके लिए सुहृद—समाज की, नीति निपट—सङ्कीर्ण हुई,
कठिन परीक्षा हुई—किन्तु, वह भलीभाँति उत्तीर्ण हुई।
विधि ने विधिवत् उसे विनय से,
विजय-विभूषण पहिनाया।
सज कर उसके लिए स्वर्ग से,
है सुन्दर विमान आया।

[९]

मिल कर उमा, रमा, ब्रह्माणी, उसको ले जाने आयीं,
अथवा उससे पातिव्रत की, वे शिक्षा पाने आयीं।
'पूर्ण हो चुकी कठिन तपस्या'—या यह समझाने आयीं,
सरस्वती के साथ स्नेह से, उसके गुण गाने आयीं।

सुर बधुओं ने सप्त सुरों से,
है सादर स्वागत गाया ।
सज कर उसके लिए स्वर्ग से,
है सुन्दर विमान आया ।

[१०]

ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि ने, दिये अमित वरदान उसे,
यहाँ वहाँ दोनों लोकों में, मिला उचित सम्मान उसे ।
धन्य धन्य अवसान उसी का, प्राप्त हुआ भगवान उसे !
होने दो अब शान्ति—भाव से झटपट अर्न्तध्यान उसे ।
जिसकी गुण-गाथाएँ गाकर,
कुकवि सुकवि है कहलाया ।
सज कर उसके लिए स्वर्ग से,
है सुन्दर विमान आया ।



पुस्तक मिलने के पते —

१ स्त्रीदर्पण कार्य्यालय, कानपुर।

२ आर० एन० टन्डन,

१६, मक़बूलगंज—लखनऊ।